तकनीकी सत्रों का विवरण

"हिम–ब्रह्मसागर योजना" जल और विद्युत ऊर्जा का अविरत स्रोत

पी.एन.विधले[1], आर.के.राय[2]

1 व्याख्याता रसायनशास्त्र, विद्याभारती महाविद्यालय, अमरावती, महाराष्ट्र
2 व्याख्याता शासकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, अमरावती, महाराष्ट्र

सारांश

भारतीय उपखंड पर एक वर्ष के भीतर जलचक्र के माध्यम से करीब 4000 घन किमी वर्षा होती है। अर्थात् भारतीय उपखंड के पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरबी समुद्र के खारे पानी पर निसर्ग की अनेक प्रक्रिया होकर जैसे कि समुद्र जल का तपना, उस जल का वाष्प बनना, बादल के रूप में पवन ऊर्जा के माध्यम से उस वाष्प को भारत वर्ष के कोने–कोने तक ले जाना और हिमालय की चोटी से लेकर समुद्र तट तक सांद्रीभवन के माध्यम से शुद्वजल भारतीय उपखंड पर बरसाना। जाहिर है इतनी सारी प्रक्रिया में निसर्ग अपनी ऊर्जा का इस्तेमाल करता है। क्या हम जल का नियोजन करके मानव जाति के उत्थान के लिये इस ऊर्जा को फिर से वापस नहीं मिला सकते ? अलग–अलग ऊँचाई पर बरसा हुआ पानी, चाहे वह बर्फ के रूप में ही क्यों न हो, उस जल में उसके ऊँचाईयों के कारण, एक विशिष्ट ऊर्जा समाई रहती है, जो कि वह एक भौतिकशास्त्रीय गणितीय तथ्यों के कारण होती हैं। (PE = mgh)

उसी ऊर्जा का उपयोग हम संपन्न जल स्त्रोतों और जल अभाव वाले क्षेत्रों को जोड़ने के लिये कर सकते हैं। भारतीय उपखंड की स्वाभाविक रचना इस प्रावधान के लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जहां उत्तर में 8000 मी0 की अधिकतम ऊँचाई पर हिमालय पर हिम का सागर फैला हुआ है और धीरे–धीरे पिघलकर वह जल का भंडार भारत भूमि में उतरता है। वहीं दूसरी ओर पूरे भारत भूमि का दक्षिणी छोर तक उतार है। जहाँ साल के अधिकतम महीने पानी की कमी रहती है। क्या हम किसी भी तरह इन क्षेत्रों को जोड़ नहीं सकते ? ये हिम सागर हमारे लिये कभी खत्म न होने वाला ब्रह्मसागर नहीं बन सकता ? अगर ऐसा हुआ तो हम बड़े भाग्यशाली साबित हो सकते हैं और बड़े से बड़े किसी भी उपखंड के लिये इस तरह जल नियोजन के लिये यह संकल्पना एक आदर्श उदाहरण बन सकती है।

मृदाओं में अन्तःस्यन्दन दरों का मापन

ओमकार सिंह[1] वैज्ञा. ई–2
मुकेश कुमार शर्मा[1] वैज्ञा. सी
वी.के.चौबे[1] वैज्ञा. एफ
राजदेव सिंह[1] निदेशक

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

जलविज्ञानीय अध्ययनों के लिए विभिन्न प्रकार की मृदाओं एवं भूमि उपयोगों की स्थिति में अन्तःस्यन्दन ज्ञान जरूरी है। अन्तःस्यन्दन दर मृदा में जल के प्रवेश कर सकने की अधिकतम दर को निर्धारित करती है। अन्तःस्यन्दन दर प्रारंभ में बहुत तेजी से कम होती है फिर कुछ समय के पश्चात यह एक स्थिर दर पर पहुंच जाती है। यह दर पूर्वगामी मृदा नमी एवं प्रपुण्ज घनत्व में परिर्वतन से प्रभावित होती है। अन्तःस्यन्दन जल संतुलन की गणना का एक आवश्यक अंग है। कृषि एवं जलविज्ञान में अन्तःस्यन्दन अध्ययनों में प्रयोग के कारण इसका अध्ययन अत्यन्त जरूरी है।

प्रस्तुत प्रपत्र में जम्मू एवं हिमाचल प्रदेश के बैरा नाला जल संग्रहण क्षेत्रों के विभिन्न प्रकार के भू उपयोगों में अन्तःस्यन्दन दरों का विभिन्न स्थलों पर अध्ययन किया गया है। अध्ययन से विदित है कि वन आच्छादित भूमियों में औसतन प्रारम्भिक अन्तःस्यन्दन दर सर्वाधिक अंकित की गयी। यह दर बंजर भूमियों में सबसे कम पायी गई।

रेगिस्तान में जल और जन सहभागिता

यतवीर सिंह[1], डी. एस. राठौर[1]
वरिष्ठ शोध सहायक वैज्ञा. ई–2

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

रेगिस्तान का नाम आते ही जन साधारण के मन में स्वतः एक ऐसा दृश्य उत्पन्न होता है जहां दूर–दूर तक रेत ही रेत है, भीषण गर्मी है और जहां का वातावरण शुष्क है, और पानी का भारी अभाव है। जबकि स्थिति भिन्न है। उपयुक्त स्थितियां अनेक स्थानों पर हो सकती हैं किंतु संसार के रेगिस्तानों में विभिन्नता होती है जैसे कि रेगिस्तान में कहीं रेतीली समतल भूमि तो कहीं चट्टानों के दृश्य तो कहीं पर नमक की झीलों की भरमार है।

सामान्यतः रेगिस्तान का निर्धारण वार्षिक वर्षा की मात्रा, वर्षा के कुल दिनों, तापमान, नमी आदि कारकों के द्वारा किया जाता है। इस संबंध में सन् 1953 में यूनेस्को के लिए पेवरिल मीग्स द्वारा किया गया वर्गीकरण लगभग सर्वमान्य हैं। उन्होंने वार्षिक वर्षा के आधार पर विश्व के रेगिस्तानों को 3 विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

जन साधारण की भाषा में रेगिस्तान का मतलब पानी का न होना अर्थात "जल ही जीवन है" का सही अर्थ रेगिस्तान में ही समझ आता है। इसलिए कहा जा सकता है कि रेगिस्तान में जल ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि यदि प्रकृति ने रेगिस्तान को अत्यधिक शुष्क क्षेत्र बनाया है तो वहीं उसमें जीवन के स्थायित्व के लिए पर्याप्त जल श्रोतों की किसी न किसी रूप में व्यवस्था भी की है। जल प्रबन्धन प्रणालियों का यदि व्यवहारिक समता और समुदाय आधारित विकास करना है, तो जल संग्रहण की परम्परागत प्रणालियों का निर्माण आज भी प्रासंगिक है। जैसे हिमाचल और जम्मू–कश्मीर में 'कुहल' जैसी पारम्परिक प्रणालियां आज भी मौजूद हैं। रेगिस्तान में जल संरक्षण, जल उपयोग में दक्षता, जल का पुनरूपयोग, भू–जल पुनर्भरण और परिस्थितिकी के स्थायित्व की ओर अत्यधिक ध्यान देने की जरूरत है।

गंगोत्री हिमनद के गलित अपवाह के विलम्बित अभिलक्षण

नरेश कुमार[1] प्र0 शो0 सहा0
मनोहर अरोरा[1] वैज्ञा.सी
राकेश कुमार[1] वैज्ञा. एफ
हुकम सिंह[1] वरि0 शो0 सहा0

1राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थ्थान, रूड़की

सांराश

हिमालय के अधिकांश बेसिनों के काफी क्षेत्रों में हिम एवं हिमनदों से आच्छ्छादित क्षेत्र होता है। इनसे निकलने वाली नदियों में, मौसम के अनुसार, मई के महीने में हिमनदों के पिघलने से अपवाह का प्रारम्भ होता है। हिमनदों से गलित अपवाह उस समय अपवाह को बढ़ाता है जब नदियों में अपवाह कम होता है इस प्रकार यह जल उपलब्धता में आने वाली कमी की पूर्ति करता है। हिमनद से पिघलता हुआ पानी पिघलने के कुछ अन्तराल बाद हिमनद के स्नाऊट पर प्रकट होता है। अपवाह के विलम्बन अभिलक्षण को अधिकतम अपवाह तक पहुँचने के समय (tp) एवं अपवाह की उत्पत्ति के समय एवं स्नाऊट पर प्रकट होने के समय के अन्तराल (te) में समयानुसार आने वाले परिवर्तनों के अध्ययन द्वारा समझा जा सकता है।

वर्तमान अध्ययन में गढ़वाल हिमालय में स्थित गंगोत्री हिमनद (हिमनद क्षेत्रफल 286 वर्ग कि.मी. कुल निकास क्षेत्रफल 556 वर्ग कि.मी.) के गलित अपवाह के विलम्बन अभिलक्षणों का अध्ययन किया गया है। इस उद्देश्य हेतु हिमनद के स्नाउट (गोमुख) के पास लगभग 4000 मीटर पर तापमान एवं अपवाह के आंकड़े मई 2004 से अक्टूबर 2004 तक एकत्र किये गये। इस प्रकार के अध्ययनों में साफ मौसम वाले दिनों के जलालेख एवं तापमान में दैनिक परिवर्तन महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं। अपक्षरण काल के प्रारम्भ में मौसमी हिम आवरण की उपस्थिति के कारण हिमनदों में अपर्याप्त जलनिकासी तंत्र एवं अधिक सुदृढ़ भंडारण क्षमता के कारण, गलित अपवाह अधिक विलम्बित अभिलक्षण प्रदर्शित करता है जिसके कारण (tp) एवं (te) का मान अधिक होता है। अपवाह विलम्बन प्राचलों की अपवाह अनुपात से तुलना से स्पष्ट पता चलता है कि समय अन्तराल (te) एवं अधिकतम तक पहुँचने का समय (tp) अपवाह में परिवर्तन से प्रतिलोमतः सह सम्बन्धित हैं।

फसलों के लिए जल की आवश्यकता

योगेश कुमार सिंघल[1]

1 सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश

सारांश

भागीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाये जाने की पौराणिक कथा है, जो सिंचाई के लिए जल प्रभाव द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की सफलता का इतिहास है। इससे यह स्पष्ट है कि भारत में प्राचीनकाल से ही सिंचाई पर जोर दिया जाता रहा है। वर्षा से प्राप्त जल–संसाधनों के पूरक के रूप में जल–सग्रंह की स्थानीय सुविधाओं नहरों, सामुदायिक तालाबों और अन्य साधनों को न केवल प्राचीन काल के बड़े–बड़े राजाओं द्वारा, बल्कि मध्ययुगीन लोगों द्वारा भी महत्व दिया जाता था। भारत में आजादी के बाद बड़ी–बड़ी सिंचाई योजनाऐं शुरू कर दी गयी। सर्वप्रथम उड़ीसा का हीराकुंड बाँध शुरू किया गया उसके बाद पंजाब का भाखड़ा बाँध जैसी अन्य योजनाएं सिंचाई हेतु भारत के विकास में अग्रणीय रही तथा सिंचाई के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान रहा।

इन योजनाओं ने लोगों में उत्साह और उमंग की ऐसी लहर दौड़ा दी कि इन्हें लोग भारत के मन्दिर कहने लगे। विकास की बहुत स्कीम स्वतंत्र भारत की महत्वपूर्ण अंग बनती गयी। वृहद और मध्य सिंचाई योजनाओं, नदियों पर बने बाँधों एवं लघु सिंचाई द्वारा सिंचाई सुविधाओं में बढ़ती प्रगति से ही भारत आज विश्व में अग्रणी राष्ट्र के रूप में माना जाता है। भारत की समृद्धि का आधार खुशहाल कृषक है जिसके लिए सिंचाई उसके खेतों की प्रजनन क्षमता का मुख्य स्रोत है। मां गंगा, एक उत्तर भारत के राजा भागीरथ का दिया ऐसा अनमोल अनुपम उपहार है जिसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। गंगा जल न केवल हमें पवित्र करता है वरन एक बड़े भूभाग को विकसित भी करता है।

मां गंगा में से तीर्थ नगरी हरिद्वार से होते हुए ऊपरी गंगा नहर का निर्माण हुआ। ऊपरी गंगा नहर की क्षमता 10500 क्यूसेक्स है। उत्तरी क्षेत्र की प्रमुख सिंचाई उसी ऊपरी गंगा नहर के द्वारा होती है। वर्तमान में उस नहर द्वारा खरीफ व रबी में सिंचाई की जाती है। जिसके कारण पश्चिमी उत्तर प्रदेश का सहारनपुर, हरिद्वार, मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद, बुलन्दशहर, अलीगढ़, आगरा, मथुरा एवं ऐटा का स्रोत सिंचित होता है। वर्षा काल में गंगा नदी में अतिरिक्त जल उपलब्ध रहता है। जिसका उपयोग धान की सिंचाई हेतु किया जाता है।

जल विभाजक के लिए अभिकल्प अपवाह वक्र संख्या का निर्धारण

एस.के.मिश्रा[2] अजय कंसल[2] पी.के.अग्रवाल[1] निशान्त अग्रवाल[2]
सह प्राध्यापक स्नातकोत्तर स्कालर प्र0 शो0 सहा0 स्नातक स्कालर

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रूड़की
2 जल संसाधन विकास एवं प्रबन्धन संस्थान, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रूड़की

सारांश

अनगेज्ड लघु जल विभाजकों के लिए वृष्टि घटक अपवाह का आंकलन जलविज्ञान की प्रमुख गतिविधियों में से एक है। जल संसाधन एवं सिंचाई अभियांत्रिकी के क्षेत्र में अनगिनत संगणक निदर्श उपलब्ध हैं तथा इनमें से अधिकांश वृहत एवं लोकप्रिय निदर्श वर्षा घटक से अतिरिक्त वर्षा निर्धारण के लिए मृदा संरक्षण सेवा वक्र संख्या प्रौद्योगिकी (SCS - CN) का प्रयोग करते हैं। इन समस्याओं के सरलतम समाधान के लिए अधिकांशतः उपयोग किये जाने वाली तकनीकों में SCS वक्र संख्या पद्धति एक लोकप्रिय पद्धति है। इस पद्धति का प्राचल CN, मृदा एवं वनस्पति के दिये गये मिश्रण में जल धारण का एक मापक है तथा इसका मान शून्य (अपवाह रहित अवस्था) से 100 (जब सम्पूर्ण वर्षा अपवाह में परिवर्तित हो जाए) तक परिवर्तनीय है।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रत्येक दिवस की वर्षा एवं इसमें सम्बद्ध अपवाह को एक घटक स्वीकार करते हुए इसकी सहायता से भारतवर्ष के झारखण्ड राज्य में स्थित मैथन जल विभाजक के दीर्घावधि दैनिक वर्षा–अपवाह आकँड़ों के लिए SCS – CN पद्धति का प्रयोग किया गया है। SCS – CN पद्धति में प्राचल के रूप में प्रयोग हेतु विभिन्न अवधियों, आर्द्र स्थितियों एवं वापसी अवधियों के लिए अभिकल्प अपवाह की व्युत्पत्ति के लिए एक सरल पद्धति को प्रस्तावित किया गया है। व्युत्पत्ति अभिकल्प CN मानों का परीक्षण उनके मान्यकरण हेतु प्रेक्षित आँकड़ों से रूढ़िवादी अभिकल्प अपवाह आंकलन के प्रयोग द्वारा किया गया है। अध्ययन किये गये जल विभाजक के लिए 10 वर्ष की वापसी अवधि हेतु CN द्वारा जनित अभिकल्प अपवाह एवं रूढ़िवादी अपवाह के मध्य तुलनात्मक अध्ययन संतोषजनक पाया गया है।

लघु सिंचाई कमान क्षेत्र का नियोजन

डॉ.एन.के.सेठ[1] डॉ.आर.एन.श्रीवास्तव[1]

1 मृदा एवं जल अभियांत्रिकी महाविद्यालय जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर–482004

सारांश

लघु सिंचाई परियोजनाएं आज के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण होती जा रही हैं। क्योंकि बढ़ती जनसंख्या व बड़े बांधों जैसे नर्मदा सागर, सरदार सरोवर एवं टिहरी बांध परियोजना के कारण बड़ी संख्या में लोगों का विस्थापन व एक बड़े भू–भाग का डूब में आना, आज की परिस्थिति में लाभकारी सिद्ध नहीं हो रहा है।

इन्हीं सब कारणों से लघु सिंचाई परियोजनाएं भविष्य में भारत के सिंचाई परिदृश्य में ज्यादा उपयोगी सिद्ध होंगी। इसी कारण से यह जरूरी हो जाता है कि लघु कमान क्षेत्रों के नियोजन और जलाशय प्रबंधन को भी अब बड़ी परियोजनाओं के जैसा महत्व देना चाहिए जिससे कि उपलब्ध संसाधनों का भी संपूर्ण विकास और सही–सही उपयोग हो सके। हालांकि दोनों परियोजनाओं के लिए विधि लगभग समान ही है पर छोटी परियोजना के लिए नियोजन अलग होता है। क्योंकि वहां पर सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दुओं को ध्यान में रखा जा सकता है। उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये मेहगांव लघु सिंचाई परियोजना जो 80°08'00" पूर्वी देशांश व 23°10'45" उत्तरी अक्षांश पर कुंडम ब्लाक, जबलपुर म0प्र0 में स्थित है। कमान क्षेत्र को अध्ययन के लिए चुना गया। इस परियोजना में 575 मी0 लम्बा मिट्टी का बांध बनाया गया है जो 16.92 मीटर ऊँचा है जिसकी भंडारण क्षमता 210 हेक्टेयर – मीटर है। परियोजना का कुल जलग्रहण क्षेत्र 515 है व कमान क्षेत्र 350.1 हेक्टेयर है, जिसमें कि 284.7 हेक्टेयर शुद्ध कमान क्षेत्र है। इस अध्ययन में परियोजना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त नियोजन नीति का निर्धारण किया गया है।

महानदी बेसिन में बाढ़ प्रबन्धन

अनिल कुमार लोहनी[1] वैज्ञा. ई2
अनिल कुमार कार[1] सहा0 अभियंता
मनोज गोयल[1] वरि0 शो0 सहा0

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

भारत के मुख्य बेसिन में से एक महानदी बेसिन पूर्वी भारत में स्थित है। इस बेसिन का कुल अपवाह क्षेत्र 141569 वर्ग कि.मी. है। इसमें छत्तीसगढ़ व उड़ीसा राज्य के बड़े भाग सम्मिलित हैं। यह बेसिन पूर्वी देशान्तर के 80.30' से 86.50' और उत्तरी आक्षांश के 19.20' से 23.35' तक के बीच स्थित है। महानदी बेसिन के मध्य भाग में एक बड़ा जलाशय हीराकुंड स्थित है। इस जलाशय का कुल अपवाह क्षेत्र 83400 वर्ग कि.मी. है। वास्तव में हीराकुंड के नीचे लगभग 50000 वर्ग कि.मी. की निचली धारा का भाग बाढ़ में सहयोग करता है। इस भाग में किसी भी प्रकार की ऐसी प्रणाली का प्रयोग नहीं किया जाता जिससे बाढ़ की भविष्यवाणी की जा सके। इस भाग में तीन मुख्य सहायक नदियाँ टेल, लौंग और जीरा हैं। इनका अपवाह क्षेत्र क्रमशः 25045, 5128 व 2383 वर्ग कि.मी. है। टेल नदी का अपवाह क्षेत्र अधिक है। इसीलिए बाढ़ में इसका सहयोग सर्वाधिक होता है। वर्ष 2008 की बाढ़ भी इसी नदी के कारण आयी थी उस वर्ष इसने 33762 क्यूसेक का उच्च रिसाव पैदा किया था।

संरचनात्मक विधि से बाढ़ को रोकना काफी कठिन व अपर्याप्त होता है। बाढ़ से हो रही जान माल की भारी तबाही को रोकने के लिए एक उच्च श्रेणी के माडल की आवश्यकता है। जो समय पर बाढ़ की भविष्यवाणी कर सके। प्रस्तुत अध्ययन में महानदी में बाढ़ की समस्याओं पर विस्तार से चर्चा की गई है और महानदी बेसिन में बाढ़ की समस्याओं को कम करने के लिए प्रयोग की जा रही विभिन्न बाढ़ प्रबन्धन विधियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

स्वैट मॉडल के शोध कार्यों में प्रयोग पर एक तुलनात्मक समीक्षा

अजीत सिंह छाबड़ा[1] प्रोजेक्ट स्टाफ
अनिल कुमार लोहानी[2] वैज्ञा. ई2
संदीप शुक्ला[3] प्रोजेक्ट स्टाफ

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

कृषि एवं अन्य शोध कार्यों में मृदा एवं जल मूल्यांकन टूल (SWAT) का प्रयोग लगभग तीस वर्षों से अधिक समय से विभिन्न देशों में हो रहा है। मृदा एवम जल मूल्यांकन टूल विषयीय जल विभाजक मॉडलिंग टूल के रूप में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार कर लिया गया है तथा इसकी प्रमाणिकता विभिन्न स्वैट संगोष्ठियों, सौ से ज्यादा मृदा एवं जल मूल्याकंन टूल से सम्बन्धित लेख एवं दर्जनों प्रख्यात पत्रों में प्रकाशित लेखों से सिद्ध होती है। यह मॉडल अमेरिका पर्यावरण संरक्षक शाखा द्वारा स्वीकार किया जा चुका है तथा अमेरिका के कई संघीय एवं राजकीय शाखाओं द्वारा इस्तेमाल भी किया जा रहा है। SWAT मॉडल पर 250 से ज्यादा प्रख्यात लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जो कि मृदा एवं जल मूल्यांकन टूल के उपयोग के बारे में विवरण देते हैं। हमारे देश में भी पिछले कुछ वर्षो से स्वैट मॉडल का उपयोग प्रारम्भ हुआ है तथा इसके द्वारा विभिन्न जल विभाजक क्षेत्रों की मॉडलिंग के सफल प्रयास किये गये हैं।

इस लेख में उनके बारे में भी चर्चा की गयी है। इस प्रपत्र में कुछ तकनीकी लेखों जिनमें SWAT का प्रयोग भारत में किया गया है उनके सबंधित क्षेत्रों तथा निष्कर्षो के अनुसार वर्गीकरण कर उन पर संक्षिप्त में चर्चा की गयी है। इसके अलावा इस प्रपत्र में धारा प्रवाह अंशशोधन, जलवायु परिर्वतन का जलविज्ञान पर प्रभाव का आंकलन और अति संवेदनशीलता विश्लेषण एवं अंशशोधन विधि, प्रस्तुत मॉडल की खूबी एवं खामियाँ तथा स्वैट मॉडल से संबधित अपेक्षित अनुसंधानों की अनुशंसा की गयी है।

एल–मोमेन्ट्स एवं पारम्परिक तकनीकों द्वारा विभिन्न प्रत्यागमन काल के लिए आंकलित बाढ़ की तुलना

राकेश कुमार[1] वैज्ञा. एफ
टी0आर0सपरा[1] शो0 सहा0
पंकजमणि[1] वैज्ञा. ई1
जगदीश पात्रा[1] वैज्ञा. बी
मनोहर अरोरा[1] वैज्ञा. सी

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

विभिन्न प्रकार की जल संसाधन परियोजनाओं/जलविज्ञानीय संरचनाओं जैसे कि बाँध, स्पिलवे, सड़क एवं रेलवे पुल, पुलिया, शहरी निकासी तन्त्र तथा विभिन्न संरचनात्मक उपायों जैसे कि बाढ़ क्षेत्र का निर्धारण, बाढ़ सुरक्षा परियोजनाओं का आर्थिक मूल्यांकन इत्यादि के लिए बाढ़ परिमाण एवं उनकी आवृत्ति सम्बन्धित सूचना की आवश्यकता होती है। सत्रहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक जलविज्ञान की शुरूआत के समय से ही वैज्ञानिकों एवं अभियन्ताओं के लिए एक गम्भीर समस्या रही है कि आंकड़ों की उपलब्धता न होने की स्थिति में बेसिन में प्रवाह का पूर्वानुमान कैसे किया जाय। जब कभी किसी महत्व के स्थान के नजदीक के वर्षा अथवा नदी प्रवाह के आंकड़े उपलब्ध नहीं होते वैज्ञानिकों एवं अभियन्ताओं के लिए विश्वसनीय अभिकल्प बाढ़ आंकलन करना मुश्किल कार्य होता है। ऐसी स्थिति में क्षेत्र के लिए विकसित क्षेत्रीय बाढ़ आवृत्ति सह–सम्बन्ध, अभिकल्प बाढ़ के पूर्वानुमान, विशेष कर लघु एवं माध्यम आवाह क्षेत्र के लिए, एक वैकल्पिक विधि हो सकती है।

आवाह क्षेत्रों में पूर्वानुमान के महत्व को देखते हुए जलविज्ञानी विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (आई.ए.एच.एस) ने एक विशेष कार्यक्रम "अमापित बेसिनों का पूर्वानुमान (पब्स)" की शुरूआत की तथा वर्तमान दशक को पब्स का दशक घोषित किया। भारतीय मानक ब्यूरो (बी.आई.एस.) के अनुसार जलविज्ञानीय अभिकल्प मापदण्ड आवृत्ति आधारित बाढ़ का लगभग सभी जल विज्ञानीय संरचनाओं जैसे कि लघु आकार बाँध, बैराज, सड़क एवं रेलवे पुल, निकासी संरचनाएं, बाढ़ नियन्त्रण संरचनाएं इत्यादि के लिए अभिकल्प बाढ़ के आंकलन में अनुप्रयोग होता है। विशाल एवं मध्यम आकार के बाँधों के अभिकल्प के लिए क्रमशः संभावित अधिकतम बाढ़ तथा मानक परियोजना बाढ़ का अनुप्रयोग होता है। अधिकतर लघु आवाह क्षेत्र अमापित अथवा निम्न मापित होते हैं। इस अध्ययन में हिम एवं वर्षा पोषित क्षेत्र के आंकड़ों का उपयोग करते हुए एल–मोमेन्ट्स एवं पारम्परिक न्यूनतम वर्ग आधारित EVI वितरण विधि तथा पी.टी.–III विधि द्वारा विभिन्न प्रत्यागमन काल के लिए बाढ़ का आंकलन किया गया तथा प्राप्त परिणामों की तुलना की गई है।

इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना, चरण–2 के आर.डी. 838 पर मृदा गठन द्वारा मृदा विशिष्टताओं का आंकलन

संजय मित्तल[1]
वरिष्ठ शोध सहायक

सी. पी. कुमार[1]
वैज्ञा. 'एफ'

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

जलविज्ञानीय विश्लेषणों में अधिकतर मृदा जल के अंतःस्यंदन, चालकता, संचयन एवं पौधा–जल सम्बन्ध का मूल्यांकन शामिल होता है। जलविज्ञानीय मृदा जल के प्रभावों को परिभाषित करने के लिए मृदा चरों जैसे गठन, कार्बनिक पदार्थ एवं संरचना का उपयोग करते हुए जल स्थितिज एवं द्रवीय चालकता के लिए मृदा जल विशिष्टताओं के आंकलन की आवश्यकता होती है। बहुत से जलविज्ञानीय विश्लेषणों के लिए फील्ड या प्रयोगशाला परिमाण कठिन, मंहगे एवं अव्यावहारिक होते हैं। मृदा गठन, मृदा जल स्थितिज और द्रवीय चालकता के मध्य सांख्यिकीय सह–संबंध कई विश्लेषणों के लिए पर्याप्त सटीक आंकलन प्रदान कर सकते हैं। सैक्सटोन एवं रॉल्स (2006) ने आसानी से उपलब्ध चरों जैसे कि मृदा गठन एवं कार्बनिक पदार्थों का उपयोग करते हुए उपलब्ध यू.एस.डी.ए.मृदा आंकड़ों के आधार पर मृदा जल विशिष्टता संबंधी समीकरणों को विकसित किया है।

इस शोध पत्र में सैक्सटोन एवं रॉल्स (2006) द्वारा विकसित मृदा जल विशिष्टता संबंधी समीकरणों का उपयोग करते हुए इंदिरा गांधी नहर परियोजना स्टेज–II के आर.डी. 838 पर मृदा विशिष्टताओं का आंकलन किया गया है। विश्लेषण के आधार पर अध्ययन क्षेत्र मुख्य रूप से दुमटी बालू एवं बालू द्वारा आवरित पाया गया है एवं इसमें म्लनांक 0.003 से 0.038, क्षेत्र जलधारिता 0.048 से 0.106, संतृप्त आर्द्रता मात्रा 0.392 से 0.417 और संतृप्त द्रवीय चालकता 63.19 मि. मी./घंटा से 197.08 मि.मी./घंटा के मध्य परिवर्तनीय आंकलित की गई है।

सॉफ्ट कम्प्यूटिंग तकनीकों द्वारा भू–जल स्तर का आंकलन

रमा मेहता[1] विपिन कुमार[2] कुमार गर्वित[3] नरेश सैनी[1]
वैज्ञा. सी प्रोफेसर शोध छात्र प्र0 शो0 सहा0

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की
2 कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग रूड़की
3 एन.आई.टी. दुर्गापुर

सारांश

देश के विभिन्न भागों में बढ़ती माँग की पूर्ति करने के लिए भू–जल का दोहन किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप भौमजल स्तर में गिरावट आ रही है इस कारण भविष्य में जल उपलब्धता का गम्भीर संकट पैदा हो सकता है। भू–जल संसाधनों की प्रक्रिया को समझने एवं भविष्य की सम्भावित परिस्थितियों में क्या हो सकता है यह जानने के लिए भू–जल प्रतिदर्शो का बड़े पैमाने पर प्रयोग हो रहा है। भू–जल प्रवाह की जटिल समस्याओं पर काबू पाने के लिए ऐसी तकनीकें विकसित करने की आवश्यकता है जो इन समस्याओं का अर्थपूर्ण समाधान प्रदान कर सके। आसान संगणन तकनीकें (soft computing techniques) जलवैज्ञानिक एवं जल संसाधन तंत्र के प्रयोग में केवल जलविज्ञानीय चर राशियों के क्रम रहित होने के कारण ही महत्वपूर्ण नहीं हैं बल्कि निर्णय लेने में अशुद्धता, वस्तुपरखता एवं अस्पष्टता तथा पर्याप्त आंकड़ों की कमी के कारण भी है।

फज्ज़ी लॉज़िक तकनीक में इस प्रकार की अनिश्चितता का अच्छे तरीके से ध्यान रखा गया है। इसीलिए उत्तर प्रदेश के बदायूँ जिले हेतु प्रतिदर्श विकसित करने के लिए नयी बढ़ती हुई तकनीकों जैसे कि न्यूरो–फज्ज़ी तकनीक एवं ए.एन एन. का प्रयोग किया गया है। जलविज्ञानीय भविष्य वाणियों में न्यूरो फज्ज़ी तकनीकों का बहुत अधिक प्रयोग किया जा रहा है। जादेह द्वारा विकसित फज्ज़ी सेट की परिकल्पना समतुल्य संबंधों को भाषा की दृष्टि से निम्न, मध्यम एवं उच्च रूप में प्रयोग करने का अवसर प्रदान करती है।

ट्रीटियम टैगिंग तकनीक द्वारा वर्षा से भूजल पुनः पूरण का आंकलन

एस. के. वर्मा[1] वैज्ञा. सी
भीष्म कुमार[1] वैज्ञा. एफ
मौहर सिंह[1] तकनीशियन

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

जल संसाधनों के उचित प्रबंधन में भू–जल में रिचार्ज का आकलन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है। सामान्यतः पर्याप्त आंकड़ों की अनुपलब्धता के कारण व्यवहारिक विधियों द्वारा भू–जल में वर्षा जल अथवा/और सिंचाई जल की वजह से रिचार्ज का आंकलन करना कठिन कार्य है। वर्षा जल अथवा सिंचाई जल का भू–जल में रिचार्ज का आकलन करने के लिए समस्थानिक विधि विशेषतः ट्रीटियम टैगिंग तकनीक भारत के कई क्षेत्रों सहित विभिन्न देशों में सफलता पूर्वक प्रयोग में लाई जा चुकी है।

प्रस्तुत प्रपत्र में नर्मदा बेसिन के अन्तर्गत जिला नरसिंहपुर (म.प्र.) के कुछ भागों में वर्षाजल एवं सिंचाई जल के कारण भू–जल में रिचार्ज का आंकलन ट्रीटियम टैगिंग तकनीक द्वारा लगाया गया है। अध्ययन क्षेत्र में जोते हुए तथा बिना जोते हुए खेतों में परीक्षण किये गये हैं। अध्ययन क्षेत्र में मुख्यतः चार प्रकार की मृदायें जैसे मिट्टी, मिट्टी दुमट, दुमट तथा रेतीली दुमट मिट्टी पायी गई हैं। अध्ययन क्षेत्र की औसत वार्षिक वर्षा 1246 मिमी0 है। अध्ययन क्षेत्र में भू–जल में रिचार्ज का प्रतिशत मृदा के प्रकार तथा अन्य भू–जल विज्ञानीय दशाओं के कारण 7.76% से 22.44% तक पाया गया है। प्रस्तुत प्रपत्र में प्रयुक्त की गई समस्थानिक विधि विशेषतः ट्रीटियम टैगिंग तकनीक की कार्य प्रणाली तथा अध्ययन क्षेत्र की विस्तृत जानकारी दी गई है। अध्ययन क्षेत्र में भू–जल में रिचार्ज का आंकलन मुख्यतः वर्ष 1995 में मानसून की अवधि में किया गया।

दक्षिण भारत के अर्द्धशुष्क क्षेत्र में पारम्परिक तालाबों पर जल ग्रहण विकास कार्यक्रम का प्रभाव–एक समीक्षा

अशोक कुमार सिंह[1] राम मोहन राव[2] रतिन्द्र नाथ अधिकारी[2]

1 केन्द्रीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र छलेसर, आगरा–282006 उ0 प्र0

2 केन्द्रीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र बैल्लारी, कर्नाटक

सारांश

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 75% से अधिक जनसंख्या गाँव में रहती है। उसकी जरुरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जल संसाधनों का सही तरीके से पूरा विकास किया जाना चाहिये। जल संसाधनों के विकास में उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, मौसम तंत्र, मृदा, वनस्पति व अन्य जरुरतों को ध्यान में रखा गया था। यह विकास इस तरह से किया गया था, जिससे ग्रामीण क्षेत्र में रहने वालों की आवश्यक, जरुरत न केवल पूर्ण हो बल्कि पड़ोसी क्षेत्र के रहने वालों के साथ किसी भी तरह का संघर्ष न हो। साथ ही जल संसाधनों का दुरुपयोग भी न हो। इस तरह का जल प्रबंधन 80 के दशक तक अच्छी तरह से चला। पिछले कुछ वर्षों में भारत व राज्य सरकारों द्वारा चलित जलग्रहण परियोजनाओं के कुछ कार्यक्रम से इस जल संरक्षण व प्रबंधन पर बुरा असर पड़ा है। जलागम कार्यक्रम (watershed programme) में जल संरक्षण (water harvesting) पर अत्यधिक जोर दिया गया है जिसमें जलग्रहण क्षेत्रों के नालों में जल संरक्षण के लिये छोटे–2 बाँध (एनीकट व चैक डैम) बनाये गये। इन छोटे–2 बाँधों को बनाने में दो बातों को ध्यान में नहीं रखा गया – एक तो जलग्रहण क्षेत्र में जल संरक्षण के लिये जल की उपलब्धता व बनाये गये बाँधों की जगह का उद्देश्य के अनुसार चुनाव। इन्हीं दो कारणों से पारम्परिक तालाबों (Tanks) पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है और गाँव की जीविका कहे जाने वाले ये तालाब अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य तालाबों को इस प्रकार से पुनर्जीवित करना है कि तालाब व भूजल (ground water) उपयोग करने वाले किसानों की जीविका की हानि न हो एवं पर्यावरण में सुधार भी हो सके।

राजस्थान राज्य के सिरोही जिले की शुष्क तहसीलों में भू–जल की वर्तमान स्थिति

राजेश कुमार गोयल[1] मुकेश शर्मा[1]

1 केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

सारांश

प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से राजस्थान राज्य का पश्चिमोत्तर भू–भाग अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। कम व अनियमित वर्षा, तीव्र हवाएं व भीषण गर्मी इस क्षेत्र के जलवायु को प्रतिकूल बनाने वाले प्रमुख कारक है। भू–जल अधिकांश भाग में काफी गहरा व प्रायः लवणीय है जो पेय व खेती दोनों ही दृष्टि से अनुकूल नहीं है। क्षेत्र की मृदाएं प्रायः बलुई व बहुत कम जल धारण क्षमता वाली होती हैं। तेज हवाओं के साथ बलुई मिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान पर बड़ी आसानी से पहुँच जाती है। अन्य वैकल्पिक जल स्त्रोतों जैसे नदी, नहर आदि के अभाव में यहाँ खेती पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करती है। प्रतिकूल भू–वायविक कारणों से यहां प्रायः सूखे की पुनरावृत्ति होती है। अतः मरुस्थलीय क्षेत्रों में मृदा व जल संसाधनों के उचित संरक्षण के द्वारा ही फसल उत्पादन में दीर्घकालिक स्थायित्व लाया जा सकता है। जल संसाधनों के उचित संरक्षण, प्रयोग व नियोजन के लिये जल संसाधनों की उपलब्धता व गुणवत्ता का समय–समय पर आंकलन इस दिशा में पहला कदम है। जल संसाधनों के दीर्घकालिक नियोजन की दृष्टि से केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने राजस्थान राज्य के सिरोही जिले की तीन शुष्क तहसीलों के भू–जल व इसकी गुणवत्ता का विस्तृत सर्वेक्षण किया है। प्रस्तुत प्रपत्र में सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारियों का विस्तृत ब्यौरा दिया गया है।

सिरोही जिला राजस्थान के दक्षिण पश्चिम हिस्से में $24^0 20' - 25^0 17'$ अक्षांश एवं $72^0 16' - 73^0 10'$ देशान्तर रेखाओं के बीच स्थित है। सिरोही जिले का कुल क्षेत्रफल 5136 वर्ग किलोमीटर है। वर्ष 2009–2010 के दौरान जिले के पश्चिम में स्थित तीन तहसीलों सिरोही, शिवगंज एवं रेवदर का भूजल सर्वेक्षण किया गया। इन तीनों तहसीलों का कुल क्षेत्रफल 3959.34 वर्ग किलोमीटर है।

इस क्षेत्र में ग्रेनाईट शैल समूह बहुतायत में फैली हुई है। क्षेत्र का पूर्वी हिस्सा, शिवगंज तहसील का उत्तरी मध्य हिस्सा एवं रेवदर तहसील के पश्चिमी हिस्से में पहाड़ तथा छोटी पहाड़ियाँ मिलती है जो कि आद्य महाकल्प के देहली महासमूह की शैलसमूह से बनी है। इन शैल समूह का उद्भव $1650–1400 \times 10^6$ वर्ष पूर्व का है। इन चट्टानों को गुलाबी जालोर ग्रेनाईट एवं सलेटी एरिनपुरा ग्रेनाईट चट्टानें भेदती हैं जिनकी आयु $600–745 \times 10^6$ वर्ष की है। अभिनव समूह के शैल समूह जैसे जलोढ़क बालू रेत एवं अन्य मृदिकाएं शिवगंज तहसील के उत्तर मध्य भाग में सिरोही तहसील के उत्तरी भाग में रेवदर तहसील के पश्चिम भाग में विस्तारित है। क्षेत्र के शेष भाग में अरावली महासमूह के शैल समूह जैसे फिलाईट, माइका, शिस्ट, क्वार्टजाइट आदि फैले हुए हैं।

अति भूजल दोहन क्षेत्र के लिए पेयजल योजना

यज्ञेश नारायण श्रीवास्तव[1] कुषान राहुल[1]

1 विंध्य इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नालॉजी एंड साइंस जबलपुर, मध्यप्रदेश–482004

1 ज्ञान गंगा इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नालॉजी एंड साइंस जबलपुर, मध्यप्रदेश–482004

सारांश

जल, विशाल परिस्थितिक पद्धति की एक मूलभूत इकाई है। स्वच्छ जल की महत्ता एवं दुर्लभता को देखते हुए सभी वनस्पति, जीव–जन्तुओं की उत्पत्ति के लिये जल ही एक अति आवश्यक मूल–भूत आधार है । इसी पर सबका जीवन निर्भर करता है एवं जल बिना किसी भी जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रकृति की यह अनमोल भेंट सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है। इस राष्ट्रीय की सुरक्षा, विकास एवं संचयन, वैज्ञानिक तकनीकों से सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं को देखते हुए क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप करना चाहिये।

ताजा अनुमानों के अनुसार 4000 विलियन क्यूबिक मीटर (BCM) वर्षाजल एवं हिमपात से सतही एवं भूजल की उपलब्धता मात्र 1869 BCM है। भौगोलिक एवं अन्य कारणों से इसका केवल 60 प्रतिशत यानि 1122 BCM जल (सतही जल 690 BCM भूजल 432 BCM) ही उपयोग में लाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त जल सभी स्थानों पर समान समय पर एवं समान रूप में उपलब्ध नहीं होता । पूरे वर्ष, वर्षा जल केवल 2–3 महीनों में ही उपलब्ध रहता है और वह भी असमान रूप में।

भारत में 50 प्रतिशत से अधिक शहरी एवं औद्योगिक जल आपूर्ति 85 प्रतिशत से अधिक ग्राम्य पेय जल आपूर्ति तथा 50 प्रतिशत से अधिक सिंचाई आवश्यकता भूमि–जल सम्पदा पर ही निर्भर है । भारत के कई भागों में भौम जल धारक रचनाओं (वाटर वियरिंग फारमेशन) से भूमि–जल इन रचनाओं के प्राकृतिक पुनर्भरण पूर्ति होने के मुकाबले तेजी से निकाल लिया जाता है। ऐसे क्षेत्रों में जल स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या व विकास का दबाब भूजल के साथ हिंसा कर रहा है। अधिक उपज व नकदी फसलों के लिए भूजल के अत्याधिक दोहन से मध्यप्रदेश भी अछूता नहीं है और ऐसे क्षेत्रों में संकट सन्निकट है। इसके लिए अभी से तद्नुरूप योजना बनाकर काम करना समय की माँग है।

उदयपुर में स्थित झामरकोटरा खनन क्षेत्र का भू–विज्ञानीय अध्ययन

कुमकुम मिश्रा[1] पंकज कुमार[1] डॉ.सुधीर कुमार[1] डॉ.भीष्म कुमार[1]
प्रोजेक्ट स्टाफ वैज्ञा. बी वैज्ञा. एफ वैज्ञा. एफ

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूडकी

सारांश

खनिज संसाधन भूगर्भ से निकाले जाने वाले वे पदार्थ हैं जो प्राकृतिक व रासायनिक सहयोग से बनते हैं। खनिज कुछ निश्चित स्थानों पर ही मिलते हैं। भारत में खनिजों का वितरण असमान है। उत्तरी मैदानों में खनिजों की कमी पायी जाती है क्योंकि यहाँ आधार शैलों पर नदियों द्वारा मिट्टी जमा कर दी गयी है। हिमालयी क्षेत्रों में भी खनिजों की कमी है एवं इनका खनन मंहगा पड़ता है। यहाँ अधिकतर खनिज पदार्थ प्रायद्वीप भारत में मिलते हैं। जहां की शैल प्राचीन एवं रवेदार है। भारत में सामान्य तौर पर लोहे के अयस्क, मैंगनीज, अभ्रक, बाक्साइट, चूना पत्थर, फास्फेट, डोलामाइट, संगमरमर, इमारती पत्थर, ताँबा, शीशा, जस्ता, निकिल, टंगस्टन, टिन आदि अयस्क एवं खनिज मिलते हैं।

दक्षिणी राजस्थान खनन उद्योग की दृष्टि से काफी समृद्ध है। इस क्षेत्र में राकफास्फेट, सैंडस्टोन, शीशा, जस्ता जैसे महत्वपूर्ण खनिज विद्यमान है। ऐसे महत्वपूर्ण खनिजों के संरक्षण एवं पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से सम्बन्धित कार्य हमारे भविष्य के प्रति सार्थक दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करते हैं। खनिज प्रसूता पृथ्वी का सौन्दर्य बना रहे तथा उससे प्राप्त खनिजों का अधिकतम उपयोग किया जाये जिससे हम आने वाली पीढ़ियों को हरी–भरी भूमि एवं प्रदूषण मुक्त वातावरण दे पायें।

प्रस्तुत प्रपत्र में राजस्थान राज्य के उदयपुर जिले में स्थित झामरकोटरा खान, जो उदयपुर से 25 कि.मी. की दूरी पर स्थित है, एक चट्टानी फास्फेट की खुली खान है। खान का कुल खनन क्षेत्र 18 वर्ग किमी. है। यह $24^0$27'-$24^0$29' अक्षांश व $73^0$49'–$73^0$52' के देशांतर पर स्थित है। समुद्र तल से खनन क्षेत्र का शीर्ष 780 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। फास्फेट की उपलब्धता 480 मीटर से 600 मीटर के मध्य स्थित है। क्षेत्र की औसत वार्षिक वर्षा 577 मि.मी. है।

खान के कुछ क्षेत्र में जल निकासी की समुचित व्यवस्था ना होने के कारण जल भराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। झामरकोटरा खान में जल के प्रवेश की सम्भावनाओं पर विस्तृत अध्ययन किया गया है। यह सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि खान में उपस्थित जल का स्रोत किसी निकट स्थित जलाशय का जल या भूजल हो सकता है। भूजल, जलाशयों के जल एवं खान के अन्दर उपस्थित जल के नमूनों का समस्थानिक प्रवणता तकनीक से विश्लेषण किया गया है। ट्रीशियम विश्लेषण, स्थानीय समस्थानिक विश्लेषण एवं जल गुणवत्ता के आँकड़ों का भी विश्लेषण किया गया है। निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए अध्ययन क्षेत्र के पुनः भरण जोनों/स्रोतों, जल गुणवत्ता एवं समस्थानिक आँकड़ों को सम्मिलित किया गया है।

कृत्रिम भूजल पुनः पूरण

राजन वत्स[1] वैज्ञा. बी
सुमन्त कुमार[1] वैज्ञा. बी
चन्द्र प्रकाश कुमार[1] वैज्ञा. एफ

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

समाप्ति की ओर अग्रसर भूजल संसाधनों (Ground Water Resources) का दक्षतापूर्वक प्रबन्धन विश्व के उन सभी वैज्ञानिकों एवं अभियंताओं के लिए एक चुनौती है जो भूजल संसाधनों के विकास एवं प्रबन्धन के क्षेत्र में कार्यरत हैं। सामान्य परिस्थितियों में किसी जलभृत (Aquifer) के, प्राकृतिक रूप से होने वाले पुनः पूरण एवं तद्नुसार उस जलभृत की सुरक्षित उत्पादक क्षमता (Safe Yield Capacity) में वृद्धि की जा सकती है। जलभृतों के पुनः पूरण हेतु मनुष्यों द्वारा इनके जल भंण्डारण में की जाने वाली संवृद्धि ही कृत्रिम पुनः पूरण है। विशुद्धता पूर्वक कहा जाये तो कृत्रिम भूजल पुनः पूरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा भूजल भृत से जल निकास की दर, संवर्द्धन (Augmentation) की दर से कम रखी जा सके।

मानव निर्मित कोई कार्य योजना जिसकी कल्पना जलभृत के भूजल भण्डारण संवर्द्धन के उद्देश्य से की गई हो, को कृत्रिम भूजल पुनः पूरण व्यवस्था के रूप में समझा जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों की पेयजल आपूर्ति के परिप्रेक्ष्य में पेयजल स्रोतों की निरंतरता को अक्षुण्ण बनाये रखा जाना एक नितान्त गम्भीर प्रश्न है। इसके लिए सरकार की भूमिका एक कार्यान्वयन प्राधिकरण (Implementation Authority) से हटते–हटते मात्र एक मार्गदर्शक (Consultant) तक सीमित हो चली है।

विश्व के प्रायः सभी देशों में विभिन्न प्रकार की वर्षाजल दोहन (Rain Water Harvesting) संरचनाओं के विकास एवं निर्माण के द्वारा समाज के लिए इनकी उपयोगिता सिद्ध हुई है। वर्षा जल दोहन एवं कृत्रिम जल पुनः पूरण, जल उपलब्धता की निरंतरता को बनाये रखने में सक्षम हैं और इसके लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं अतः स्थानीय निकायों द्वारा इस प्रकार की गतिविधियों को व्यापक स्तर पर कार्यान्वित किया जाना एक अति लाभकारी कृत्य होगा।

कृत्रिम जल पुनः पूरण प्रक्रिया को अपनाने का मुख्य ध्येय यद्यपि भूजल भंडारों की वृद्धि एवं उनका संरक्षण करना है किन्तु इसके अन्य कई लाभदायी प्रयोग भी हैं। ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के लिए विकसित की गई कृत्रिम भूजल पुनः पूरण की

विधियाँ विभिन्न संस्थाओं द्वारा व्यवहार में लाई गई हैं। इनका पुनरावलोकन करने पर पाया गया कि भारत में विभिन्न संस्थाओं द्वारा कृत्रिम भूजल पुनः पूरण पर किये गये प्रयोग अपरिरूद्ध (Unconfined) अर्द्धपरिरूद्ध (Semi Unconfined) तथा परिरूद्ध (Confined) जलभृतों के कृत्रिम जल पुनः पूरण की संभावनाओं को दर्शाने वाले हैं।

कृत्रिम भूजल पुनः पूरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों के अधिक होने के कारण यह प्रक्रिया जटिल है और यही कारण है कि इसका ज्ञान सम्पूर्णता के स्तर तक अभी भी नहीं हो पाया है। कृत्रिम भूजल पुनः पूरण पर अधिकतर अध्ययन स्थल विशेष (Site Specific) प्रकार के हुए हैं और वर्णनात्मक प्रकृति के हैं जिसके कारण अन्य क्षेत्रों में अथवा अन्य प्रकार के स्थलों पर कृत्रिम भूजल पुनः पूरण के प्रयोग किये जाने से अधिकतम सफलता प्राप्ति की पूर्ण सम्भावनाओं का आकलन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। कृत्रिम पुनः पूरण की तकनीक की उपयोगिता की गणना करने में अग्रणी किंतु दुर्ग्राह्य (Elusive) एक तथ्य यह भी है कि भूजल पुनः पूरण को अर्थशास्त्रीय (Economics) एवं संस्थापरक (Institutional) दृष्टिकोण से पर्याप्त ध्यान नहीं मिला है एवं इस क्षेत्र में आगे व्यापक अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण अगरतला की भूजल संपदा पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभाव

शशिरंजन कुमार
वैज्ञा. ई.1

बाढ़ प्रबंधन अध्ययन केन्द्र, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, गुवाहटी

सारांश

वर्तमान समय में ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन से जलवायु परिवर्तन के कारण नैसर्गिक वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की शोध संख्या में बेतहासा वृद्धि हो गयी है जो कि अपने आप में जलवायु परिवर्तन की गंभीरता तथा इसके अध्ययन की महत्वता को दर्शाता है। विकसित तथा विकासशील देशों के सरकारी दिशा निर्देश में यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है। मानवजनित ग्रीनहाऊस गैसों के लगातार उत्सर्जन, जलवायु परिवर्तन तथा दिनों–दिन बेतहासा बढ़ती आबादी के कारण लगातार घटते जा रहे विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों (वन, जल इत्यादि) के कारण वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की गंभीरता संबंधी अध्ययन 21वीं सदी में एक महत्वपूर्ण और चिन्तनीय विषय बन गया है। लगभग हर वैज्ञानिक मंच पर जलवायु परिवर्तन संबंधी परिचर्चा एक पसंदीदा विषय बन गया है।

प्रस्तुत आलेख में भी जलवायु परिवर्तन के कारण मानसूनी वर्षा की कमी से अगरतला शहर के भूजल पर पड़ने वाले प्रभाव की विवेचना की कोशिश की गयी है।

अगरतला शहर को उत्तरपूर्वी भारत में स्थित त्रिपुरा राज्य की राजधानी के रूप में जाना जाता है। इस शहर का अपना ऐतिहासिक तथा धार्मिक महत्व तो है ही, वर्तमान में यह एक समृद्ध व्यवसायिक नगरी के रूप में भी विस्तृत होता जा रहा है। बंग्लादेश के साथ अंतर्राष्ट्रीय सीमा से लगे होने के कारण तथा भारतीय रेल मानचित्र में आने के बाद इस शहर का महत्व उत्तरपूर्वी भारत के अन्य शहरों के मुकाबले ज्यादा ही बढ़ गया है। एक आश्चर्यजनक तथ्य अगरतला के बारे में यह भी है कि इस शहर का जनसंख्या घनत्व विश्व के कुछ सर्वाधिक विकसित माने जाने वाले शहरों से भी ज्यादा है। अगरतला शहर की भौगोलिक संरचना ऐसी है कि शहर के दक्षिणी भाग में बहने वाली हावड़ा नदी के अलावा अन्य कोई नदी स्रोत नहीं है। हांलाकि उत्तरी दिशा में कटकल नदी का बहाव क्षेत्र है लेकिन इसका अस्तित्व गंदे नाले वाले पानी से ज्यादा नहीं कहा जा सकता है। हावड़ा नदी भी केवल मानसून अवधि तक ही जल से परिपूर्ण रहती है और मानसून के बाद यह भी सूख जाती है। वर्तमान में संपूर्ण अगरतला शहर के निवासियों को अपने दैनिक उपयोग तथा पीने के पानी के लिए पूर्णतः भूजल पर ही निर्भर रहना पड़ रहा है। इसके फलस्वरूप दिनों–दिन हैडंपम्पों तथा ट्यूबवेलों की संख्या में बेतहासा वृद्धि होती जा रही है। जिसका दबाव उपलब्ध भूजल संपदा पर साफ–साफ देखा जा सकता है। 2001 में किए गए सर्वेक्षण में पाया गया था कि भूजल स्तर 18 से 72 फीट तक था वहीं 2011 के सर्वेक्षण में पाया गया कि भूजल स्तर 30 से 120 फीट तक नीचे गिर गया है। अगरतला शहर की एक खासियत और है कि यहां यत्र–तत्र छोटे–बड़े ताल–तलैया (लगभग 97,000,00 sq.ft. में, स्रोत : ASPCB) बड़ी संख्या में स्थित हैं जो कि भूजल के रिचार्ज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आ रहे हैं। इन ताल तलैयों में लगभग 51% की हिस्सेदारी निजी मालिकों के कब्जे में है और 49% सरकारी अधिपत्य में है।

महाभारतकालीन नगर तेजपुर (असम) के भूजल में स्थिर समस्थानिकों के गुणधर्म में स्थानीय विचलन

शशिरंजन कुमार[1] भीष्म कुमार[2] शिव प्रकाश राय[2] विशाल गुप्ता[2] जमील अहमद[2]
वैज्ञानिक 'ई1' वैज्ञानिक 'एफ' वैज्ञानिक 'ई1' वरिष्ठ शोध सहायक वरिष्ठ शोध सहायक

1 बाढ़ प्रबंधन अध्ययन केन्द्र, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, गुवाहाटी
2 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

सर एडमंड हिलेरी ने कहा है, "पर्यावरणीय समस्या मनुष्य के कारण ही शुरू होती है तथा इसका शिकार भी स्वयं मनुष्य ही बनता है"। प्रचुरता मे उपलब्ध जल संसाधनों के कारण उत्तरपूर्वी भारत को जहाँ भारत का पावर हाउस कहा जाता है वहीं समस्याओं के निराकरण के लिए जरुरी आँकड़ों का यहाँ अकाल सा है । इस विरोधाभास के समाधान के लिए समाहित समन्वित प्रयासों तथा अत्याधुनिक तकनीकों के उपयोग की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता है । इस क्षेत्र में जल संसाधन की समस्या बहुत बड़े परिमाण के रूप में है । इस क्षेत्र में बहुत बड़े आयाम में फैली हुई जल संसाधन समस्याओं को सुलझाने के लिए बहु–अनुशासनात्मक प्रयास तथा सशक्त सामाजिक–राजनीतिक इच्छाशक्ति की सख्त जरुरत है । इसके लिए सशक्त आंकड़ों की जरुरत लंबे समय से महसूस की जा रही है ।

पिछले कुछ दशकों में नाभिकीय जलविज्ञान की बहुउपयोगिता के कारण इसका प्रयोग जलविज्ञानीय समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को सुलझाने में प्रचुरता से होने लगा है । इसके लिए अत्यंत ही उन्नत नाभिकीय जलविज्ञानीय यंत्रों का निर्माण हुआ है, जिसके कारण जलविज्ञानीय अध्ययन अति शुद्धता के साथ करना संभव हो पाया है । इन यंत्रों की मदद से रेडियोधर्मी तथा स्थिर समस्थानिकों की माप अत्यधिक शुद्धता से की जाती है । जिसकी मदद से कृषि, जल संसाधन, जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि कठिन समस्याओं की जानकारी तथा इनके निराकरण में मदद आसान हो गयी है जो कि परंपरागत तकनीकों के उपयोग से लगभग असंभव सा था।

वर्तमान में स्थिर समस्थानिकों (isotopes) का उपयोग बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक अनुसंधान में किया जा रहा है। यहां तक कि पोषण अध्ययन के क्षेत्र में भी स्थिर समस्थानिकों का उपयोग मानव शरीर के माध्यम से पोषक तत्वों के प्रवाह के अध ययन करने के लिए किया जाता है । चूंकि ये सुरक्षित और गैर रेडियोधर्मी होते हैं अतः ये शिशुओं और गर्भवती महिलाओं में भी इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

उत्तरपूर्वी भारत के किसी भी स्थल के भूजल में समस्थानिकों के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रूड़की ने तेजपुर शहर के भूजल में आक्सीजन तथा हाइड्रोजन समस्थानिक वर्गीकरण एवं स्थानीय भूजल समस्थानिक रेखा का स्थापन करने का प्रयास किया है । इससे क्षेत्र में जल संसाधनों की विभिन्न समस्याओं से संबंधित अध्ययनों का समस्थानिकों की सहायता से आसानी से अभिकल्पन किया जा सकता है।

नदीपात्र के लिए अनुकूलतम हाइड्रोमेट्रिक नेटवर्क की आवश्यकता और व्यवस्था

एफ.टी. मैथ्यू[1] संयुक्त निदेशक

राहुल सु. जगताप[1] वरिष्ठ अनुसन्धान अधिकारी

काजल जैन[1] अनुसन्धान अधिकारी

1 केन्द्रीय जल और विद्युत अनुसंधानशाला, पुणे 411024

सारांश

किसी भी क्षेत्र में जल पूर्ति सूचना के लिए संपूर्ण सप्तक के पानी संबंधित आंकडें की आवश्यकता होती है, जो पानी और मौसम संबंधित स्टेशनों के समूह या नेटवर्क द्वारा एकत्रित किया जाता है। जल सूचना प्रणाली किसी भी क्षेत्र की जल संसाधन की योजना, रूपरेखा और प्रबंधन के लिए अपेक्षित आंकडे उपलब्ध कराती है, जिसमें क्षेत्र की बाढ बचाव प्रचालन और प्रबंधन के उपाय सम्मिलित है। नदी के धारा प्रवाह आंकडे जल पूर्ति स्टेशनों के नेटवर्क द्वारा पूरे जलाशय के लिए एकत्रित किए जाते हैं और साथ ही नदी चरण व तलछट रुकाव के आंकडे भी एकत्रित किए जाते है। जल पूर्ति नेटवर्क एक पूर्ण जल मौसम विज्ञान नेटवर्क की उप प्रणाली गठित करता है।

नदीपात्र का हाइड्रोमैट्रिक नेटवर्क प्रायः विकासी प्रक्रिया द्वारा विकसित होता है। उभरती हुई देशी और विदेशी आवश्यकताओं को समय समय पर पूरा करने के लिए एक अवधि के दौरान नेटवर्क को विकसित किया गया है। ऐसे उदाहरण है बाढ नियंत्रण, जल शक्ति विकास, जल प्रदूषण नियंत्रण, सूखा प्रबन्धन, विश्वव्यापी पर्यावरण नियंत्रण हेतु योगदान, इत्यादि। हाइड्रोमैट्रिक नेटवर्क की रूपरेखा बनाने के लिए नदीपात्र के आकार व प्रकार की जरूरत के साथ संधारणीयता और दोहरे परिहार की आवश्यकता होती है। तंत्र की रूपरेखा एक गतिशील प्रतिक्रिया है जिसका नदीपात्र की संरचना परिस्थितियों के बदलने में अहम् योगदान है। हाइड्रोमैट्रिक नेटवर्क की प्रमाणिता बजटीय आवंटन पर बहुत निर्भर करती है। इसी वजह से हाइड्रोमेट्रिक तंत्र एक समय पर बहुत अनुकूलतम होता है पर जरूरी नहीं है कि बाद में भी अनुकूलतम हो। ऊपर बताए हुए कारणों की वजह से ही तंत्र को समय–समय पर संशोधित करने की जरूरत है।

इसी संदर्भ में यह लेख आधुनिक समय के औजार और तकनीकों के अनुकूलतम हाइड्रोमैट्रिक नेटवर्क के अध्ययन के लिये लिखा गया है। यह अध्ययन बताता है कि किस तरीके से यह मुद्दा ग्रहणशील अभिगम एवं उपलब्ध पात्र की मौजूदा ज्ञान, प्रयोगसिद्ध मानदंड विश्लेषणात्मक के द्वारा हल किया जा सकता है। अनुकूलतम हाइड्रोमैट्रिक नेटवर्क की समस्याओं और संभावनाओं की पहचान के लिए महाराष्ट्र की वास्तिवक नदीपात्र का उदाहरण लिया गया है, जिसका नाम अपर भीमा पात्र है। किस तरह यह मानदंड इस अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है यह नेटवर्क अनुकूलतम की मानक मानदंड विस्तृत रूप से बताए गए हैं।

अंकीय चित्र प्रणाली द्वारा पोंग (राणा प्रताप सागर) जलाशय का तलछट आंकलन

सन्दीप शुक्ला[1] संजय कुमार जैन[1] जयवीर त्यागी[1]
प्रोजेक्ट स्टाफ वैज्ञा. एफ वैज्ञा. एफ

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूडकी

सारांश

जलाशयों के साथ अवसाद या तलछट का होना एक मुख्य घटक है। जो कि जलाशयों की अवधि को हानि पहुँचाता है। अवसाद कण साधारणतः दूर तक फैले आवाह क्षेत्र में नदी बहाव से हुए मृदा अपरदन प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं। जब नदी का बहाव जलाशय में कम होता है तो उसके साथ–साथ अवसाद भी जलाशय में जमा हो जाता है। और इसकी जलधारण क्षमता को कम कर देता है। जलाशय की जलधारण क्षमता में सीमा से परे हुई क्षति हमारे मूल उद्देश्य में बाधा उत्पन्न करती है जिसके लिए जलाशय का निर्माण किया गया होता है। इसीलिए जलाशयों की उपयोगी अवधि और तलछट जमा होने की दर को ज्ञात करने के लिए आवश्यक है कि उनका एक निश्चित अन्तराल पर आंकलन किया जाए। इस आंकलन हेतु कुछ पारंपरिक विधियाँ जैसे कि जल सर्वेक्षण एवं अन्तर्वाह–बहिर्वाह प्रक्रम उपयोग में लायी जाती हैं जो कि मंहगी होने के साथ–साथ ज्यादा समय लेती हैं। इसीलिए समय और मंहगी होने के कारण पिछले कुछ वर्षो से सुदूर संवेदन विधि का इस क्षेत्र में सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है। जिसमें उपग्रह द्वारा जलाशय के फैलाव क्षेत्र का आसानी से अध्ययन किया जा सकता है।

यह विधि हिमालय की तराई में बने भारत गंगेय मैदान के ऊपरी किनारे पर स्थित ब्यास नदी पर बने पोंग जलाशय के तलछट जमा होने की दर की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लायी गई है। यह जलाशय हिमाचल प्रदेश के कांगडा जनपद में स्थित है। इस विधि में जलाशय में एकत्रित अवसाद मात्रा को ज्ञात करने के लिए भारतीय उपग्रह (पी–6) के संवेदक लिस–तृतीय से प्राप्त आंकडों का वर्ण क्रमीय विश्लेषण किया गया है। यह प्रपत्र दर्शाता है कि जलाशय के सजीव संग्रहण क्षेत्र की क्षमता 7292 मिलियन घ.मी. तथा निर्जीव संग्रहण क्षेत्र की क्षमता 8570 मिलियन घ.मी. है। पूर्ण रूपेण भरे जलाशय का फैलाव क्षेत्र लगभग 240 वर्ग कि.मी. तथा पोंग बांध तक इसकी नदी ब्यास का आवाह क्षेत्र लगभग 12377.496 वर्ग कि.मी. है।

जलाशय के अस्थाई विमीय क्षेत्र में होने वाले सामायिक परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए भारतीय उपग्रह (पी–6) के संवेदक लिस–तृतीय से प्राप्त आठ तिथियों के आंकडों (10 अक्टूबर 2008 से 4 जुलाई 2009) को प्रयोग में लाया गया है। जिसमें अक्टूबर माह अधिकतम जल स्तर 426.72 मी. तथा जुलाई माह न्यूनतम जल स्तर 338.696 मी. को दर्शाता है। जल फैलाव क्षेत्र की गणना के लिए नार्मलाइस्ड डिफ्रेंस वाटर इंडिसिसं (NDWI) विधि का प्रयोग किया गया है। विश्लेषण से प्राप्त आंकडे दर्शाते हैं कि अधिकतम जलस्तर पर जलाशय की धारण क्षमता 7233.622 मिलियन घ.मी., जल फैलाव क्षेत्र 246. 356 वर्ग कि.मी. तथा तलक्षट जमा होने की दर लगभग 18.08 मिलियन घन मी. प्रतिवर्ष है। यह प्रपत्र भारतीय उपग्रह (पी–6) के संवेदक लिस–तृतीय के आंकड़ों तथा सुदूर संवेदन विधि की उपयोगिता की भी व्याख्या करता है।

जल शुद्धिकरण हेतु उपलब्ध आधुनिक तकनीकें

मुकेश कुमार शर्मा[1] बबीता शर्मा[1] राकेश गोयल[1] बीना प्रसाद[1]
वैज्ञा. सी शोध सहायक तकनीशियन शोध सहायक

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

दिन–प्रतिदिन बढ़ते औद्योगीकरण तथा अधिक कृषि उत्पादन के लिए अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से जल प्रदूषित होता जा रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति पेयजल की जलगुणवत्ता के प्रति सजग हो गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जल शुद्धिकरण हेतु उपलब्ध विभिन्न तकनीकों एवं बाजार में उपलब्ध वाटर प्योरिफायर खरीदने से पहले विभिन्न जानकारियों पर भी प्रकाश डाला गया है तथा विभिन्न वाटर प्योरिफायर की क्षमता के बारे में भी जानकारी दी गई है।

हरियाणा राज्य में जल संसाधनों के प्रबन्धन की समस्याएं एवं जीओइनफोरमेटिक्स तकनीक द्वारा इनका निदान

डॉ. भगवान सिंह चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर
भू–भौतिकी विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

सारांश

जल संसाधनों के सतत विकास व प्रबन्धन के लिए इन संसाधनों की सही मात्रा का पता चलना तथा प्रयोग के स्तर के बारे में जानकारी होना बेहद जरूरी है। बढ़ती आबादी, औद्योगिकीकरण व शहरीकरण के कारण जल संसाधनों की उपलब्धता पर लगातार विपरीत प्रभाव पड़ता जा रहा है। एक तरफ पानी की मांग बढ़ी है और दूसरी तरफ पानी की गुणवत्ता पर लगातार प्रदूषण का प्रकोप जारी है। नयी तकनीकों के प्रयोग से इन संसाधनों की मात्रा तथा प्रयोग के स्तर के बारे में कम समय में तथा सही जानकारी प्राप्त करना बेहद सुगम हो गया है। इस तकनीक का नाम है जीओइनफोरमेटिक्स। जीओइनफोरमेटिक्स तकनीक सुदूर संवेदन, भौगोलिक सूचना तंत्र, ग्लोबल पोजिशनिंग तंत्र तथा सूचना एवं संवाद प्रौद्योगिकी के संयुक्त प्रयोग की कला है। इन तकनीकों के प्रयोग से किसी भी प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति,मात्रा तथा उसके बदलाव के बारे में सुगमता से कम समय में तथा कम खर्चे में तुरंत प्रभाव से जाना जा सकता है।

हरियाणा राज्य गंगा तथा सिंधु नदी के जल विभाजन क्षेत्रों के मध्य स्थित है। समय के साथ राज्य में जल संसाधनों के उपयोग व प्रबन्धन की दृष्टि से दो तरह की समस्याएं उभर कर सामने आयी। राज्य के ऐसे क्षेत्र जहाँ भूजल की गुणवत्ता अच्छे किस्म की है। इन क्षेत्रों में भूजल के अत्यधिक दोहन के कारण पानी का स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है । इसका मुख्य कारण गेहूँ तथा चावल की खेती का फसल चक्र भी समझा जाता रहा है । उत्तर तथा दक्षिणी हरियाणा के क्षेत्र इस समस्या से ग्रस्त हैं। इन क्षेत्रों में 1976 से 2010 के बीच कई जगहों पर पानी 15 से 25 मीटर तक नीचे जा चुका है। दूसरी तरफ हरियाणा का मध्य क्षेत्र है। हरियाणा की प्राकृतिक भूआकृति को देखने से पता चलता है कि यह तश्तरीनुमा है। उत्तर में शिवालिक की पहाड़ियां, दक्षिण में अरावली की पहाड़ियाँ तथा पश्चिम में रेतीला क्षेत्र व बालू के टीले हैं। इन सब की उपस्थिति से भूमिगत जल का प्रवाह

केन्द्रीय/मध्य क्षेत्र की तरफ है। इस कारण इस हिस्से में पानी का स्तर लगातार ऊपर आता जा रहा है। इन क्षेत्रों में भूजल की गुणवत्ता भी खराब है इस कारण इसका उपयोग कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में नहीं किया जा सकता। उधर इन क्षेत्रों में सतही जल नहरों द्वारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अतः उसके उपयोग से भी भूजल का स्तर लगातार ऊपर बना रहता है।सिंचाई की विधियाँ भी काफी पुरानी हैं जिनमें पानी एक मुहाने से खोला जाता है तथा पूरा खेत भर दिया जाता है। इस कारण भी काफी पानी वापिस बहाव के जरिये भूजल से जा मिलता है। हरियाणा के मध्य क्षेत्र में पानी की निकासी के लिए कोई सतही ड्रेन भी नहीं है इस कारण भी बरसात का पानी इस क्षेत्र से बाहर नहीं जा सकता। इन सभी कारणों का मिला–जुला असर इस क्षेत्र को सेम की समस्या से ग्रसित कर गया है तथा कई क्षेत्रों में पानी का स्तर जड़ क्षेत्र (0–3 मीटर) तक पहुँच चुका है।

इन समस्याओं से निपटने के लिए प्रदेश में समग्र जल प्रबंधन नीति की आवश्यकता है। इसके तहत उन क्षेत्रों में जहाँ पानी का स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है वहाँ कृत्रिम जल रिचार्ज की विधियों को अपनाने की जरूरत है तथा ऐसे क्षेत्र जहाँ भूजल की गुणवत्ता खराब है वहाँ ऐसी फसलों की किस्में इजाद करनी पड़ेंगी जो नमकीन पानी को सहन कर सके तथा सही उत्पादन भी दे सकें साथ ही सिंचाई की ऐसी विधियाँ अपनानी पड़ेंगी जिनसे पानी का उचित प्रयोग हो सके। जीओइनफोरमेटिक्स के द्वारा ऐसे क्षेत्रों का पता लगाना, समस्याओं का अध्ययन करना तथा उनसे निजात पाने के लिए उपाय सुझाना आदि बेहतरीन तरीके से तथा जल्द पूरे किये जा सकते हैं। इस तकनीक द्वारा भू आकृति, मृदा, भू–उपयोग, जल विभाजन क्षेत्रों आदि का चित्रण तथा संख्यात्मक अध्ययन, जल विभाजन क्षेत्रों का प्रबन्धन जैसे चैक डैम, मृदा बांध, गल्ली प्लगिंग, संभावित भूजल क्षेत्रों का चित्रण आदि थोड़े समय में ही तैयार किए जा सकते हैं । इन सभी मानचित्रों के एकीकृत अध्ययन से जल तथा भू–संसाधनों के समुचित प्रबन्धन की कार्य विधि तैयार की जा सकती है। इस प्रपत्र में राज्य में जल प्रबंधन की समस्याओं का तथा जीओइनफोरमेटिक्स तकनीक द्वारा उनके निदान को उदाहरणों की सहायता से उद्धृत किया गया है। जीओइनफोरमेटिक्स विधि द्वारा तैयार किये गये मानचित्र तथा उन पर आधारित कार्यों को भी उदाहरण की सहायता से दर्शाया गया है।

सिंचाई जल उपयोग की दक्षता बढ़ाने के लिए मृदा नमी आंकलन की तकनीकें

जयवीर त्यागी[1] वैज्ञा. एफ

एस.एल.श्रीवास्तव[1] शोध सहायक

राजदेव सिंह[1] निदेशक

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

भारत के सिंचित कृषि क्षेत्र में पानी का बेहतर उपयोग न होना एक चिन्ता का विषय है। अन्य क्षेत्रों में पानी की बराबर बढ़ती माँग के कारण सन् 2025 तक सिंचाई क्षेत्र में पानी की वर्तमान हिस्सेदारी 84% से घटकर 74% तक होने का अनुमान है। इसलिए सिंचाई जल उपयोग की दक्षता के वर्तमान स्तर में सुधार लाना जल प्रबंधन क्षेत्र का आज एक महत्वपूर्ण शोध का विषय है। इस परिप्रेक्ष्य में मृदा नमी की माप और उसका सिंचाई के निर्धारण में उपयोग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। मृदा सतह के नीचे मृदा नमी की जानकारी के अभाव में फसलों की ज्यादा या कम सिंचाई करने की परम्परा है। सिंचाई जल का सही समय पर उचित मात्रा में उपयोग न केवल फसलों द्वारा पानी उपयोग की उच्च दक्षता को सुनिश्चित करता है बल्कि पोषक तत्वों के निक्षालन (Leaching) को भी कम करता है। परिणाम स्वरूप मिट्टी में बेहतर वायु संचरण से फसलों की पैदावार एवं कृषि उत्पादकता में महत्वपूर्ण सुधार होता है।

किसी समय पर फसल को कितना मृदा जल उपलब्ध है तथा कब और कितनी सिंचाई करनी है, की जानकारी के लिए मृदा नमी का आकलन बहुत उपयोगी है। सिंचाई में मृदा नमी आंकड़ों का उपयोग जल और ऊर्जा के संरक्षण, सतही और भूमिगत जल के प्रदूषण को कम करने तथा फसलों की इष्टतम पैदावार बनाये रखने में भी सहायक है। मृदा नमी को मापने की बहुत सारी विधियाँ व उपकरण उपलब्ध हैं जिनका चयन उपकरणों की लागत एवं उपयोगिता पर निर्भर करता है। इस प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य मृदा नमी के मापन की विभिन्न उपलब्ध तकनीकों एवं उपकरणों की जानकारी देना तथा मृदा नमी के आँकड़ों का बेहतर उपयोग कर सिंचाई के क्षेत्र में पानी की उपयोग दक्षता को सुधारने पर बल दिया गया है।

जलगति अभियांत्रिकी सम्बन्धी संरचनाओं/यंत्रों के प्रभावी परिकल्पन में प्रतिरूप अध्ययन की उपयोगिता

सुरेश चन्द्र शर्मा[1] डा0 सुभाश मित्रा[1] शंकर कुमार साहा[1]
मुख्य अभियन्ता (परिकल्प) प्रभारी अधी0 अभि0 अनुसंधान अधि0 एवं निदेशक

1 सिंचाई अनुसंधान संस्थान, रूड़की

सारांश

किसी भी देश अथवा क्षेत्र के विकास में जल संसाधन के विकास का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। जल संसाधन के समुचित प्रबन्धन एवं उपयोग से बाढ़ नियन्त्रण, जलविद्युत उत्पादन, पेयजल, कल–कारखानों, ताप व आण्विक ऊर्जा उत्पादन हेतु जलापूर्ति, सिंचाई, आदि में मदद मिलती है। अन्ततः मानव समाज के आर्थिक व सामाजिक विकास में एक मजबूत कड़ी के रूप में सहायक साबित होती है। जल स्त्रोतों के विकास व प्रबंधन हेतु विभिन्न द्रव चालित संरचनाओं के निर्माण व यंत्रों के स्थापना की आवश्यकता पड़ती है। जलगतिय संरचनाओं /यंत्रों का परिकल्पन विभिन्न प्रयोगों तथा दीर्घकालीन अनुभवों से प्राप्त सूत्रों (इम्पिरिकल फार्मूले) पर आधारित होता है साथ ही जल गति अभियांत्रिकी में कई जटिल/अज्ञात समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जिसका निदान उपलब्ध सूत्रों/अनुभवों से करना सरल नहीं होता है। जलगतिय संरचनाओं/यंत्रों के परिकल्पन से जुड़े अभियन्ता उन संरचनाओं / यंत्रों के निर्माण के पूर्व यह जानने के इच्छुक रहते हैं कि उनके द्वारा परिकल्पित संरचना/यंत्र वास्तविक रूप में निर्माणोपरान्त किस प्रकार कार्य करेगा। उनके मन में उठ रही शंकाओं का समाधान हो जाये इन्हीं शंकाओं को दूर करने, परिकल्पित संरचना/यंत्र का निर्माण/स्थापना के बाद उनके कार्य एवं द्रवीय व्यवहार को जानने, विभिन्न जटिल जलगति समस्याओं के निदान, पर्याप्त, किफायती व टिकाऊ परिकल्पन आदि के लिये इनका प्रतिरूप अध्ययन एक सफलतम माध्यम है।

प्रतिरूप अध्ययन में मुख्यतः मूल संरचना/यंत्र का छोटे/बड़े आकार प्रतिरूप तैयार कर उसमें जल प्रवाहित कर उसके प्रवाह से सम्बन्धी कारक यथा वेग वितरण, दाब, जल प्रवाह का व्यवहार, उसके परिकल्पन की पर्याप्तता आदि का अध्ययन किया जाता है। जलगतिय प्रतिरूप अध्ययन मुख्यतः फ्राउड के सादृश्यता का सिद्धान्त, रेयनाल्ड के सादृश्यता का सिद्धान्त आदि के आधार पर भौतिकीय, इलैक्ट्रानिक/विद्युतीय एवं गणितीय/संख्या सूचक प्रतिरूपण के माध्यम से सम्पादित किया जाता है।

समस्थानिक तकनीकों द्वारा टिहरी जलाशय से जल रिसाव के स्रोतों का आंकलन

डॉ. एस.पी.राय[1] वैज्ञा. ई.1
डॉ. भीष्म कुमार[1] वैज्ञा. एफ
डॉ. सुधीर कुमार[1] वैज्ञा. एफ
पंकज गर्ग[1] वैज्ञा. बी

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

टिहरी बाँध का निर्माण गंगा की मुख्य सहायक नदी भागीरथी पर किया गया है। टिहरी बाँध की ऊँचाई 855 फीट (260.5 मी.) है तथा यह विश्व का पाचँवा एवं एशिया क्षेत्र में सबसे ऊँचा, मृदा व चट्टानों से निर्मित बाँध है। वर्तमान में टिहरी बाँध प्रचालन स्थिति में है। बाँध के अनुप्रवाह एवेटमेन्ट में जल दबाव कम करने के लिए जल निकासी गैलरियों का एक जाल निर्मित किया गया है। जलाशय के भराव एवं खाली होने के दौरान विभिन्न निकास गैलरियों के द्वारा नियमित रूप से जल निस्यंदित होता है। परन्तु जलाशय में जल भराव के दौरान, जल निकासी के लिये बनायी गयी कुछ गैलरियों जैसे ए.जी.आर.–3 एवं ए.आइ.जी.आर. में मुख्यतः सात स्थानों से निस्यंदित जल का निस्सरण तेजी से होता है।

अतः इस अध्ययन में निस्यंदित हो रहे जल के स्रोत्र का अभिनिर्धारण समस्थानिकों के प्रयोग से किया गया है। इसके अन्तर्गत बाँध के साथ–साथ विभिन्न जल स्रोतों जैसे भूजल, वाहिका, वर्षा इत्यादि के जल नमूनों के समस्थानिकों जैसे ऑक्सीजन–18 और हाइड्रोजन–2 का परीक्षण किया गया है। इस परीक्षण के आधार पर यह पाया गया है कि दोनों निकासी गैलरियों में एक स्थान को छोड़कर शेष सभी स्थानों से निस्यंदित जल का स्रोत बाँध से निर्मित झील में एकत्रित पानी ही है। तथा जलाशय के स्तर का आँकड़ा और निस्यंदित निस्सरण की दर का आपसी सम्बंध समस्थानिक परिणामों का समर्थन करते हैं।

सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तंत्र प्रणाली के प्रयोग द्वारा जल संसाधनों का अनुप्रयोग

तनवीर अहमद[1] प्र.शो.सहा.
एस.के. जैन[1] वैज्ञा. 'एफ'
पी.के. अग्रवाल[1] प्र.शो.सहा.
देवेन्द्र सिंह राठौर[1] वैज्ञा.'ई–2'

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रूड़की

सारांश

जल मानव जीवन के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक अनमोल देन है। जल मनुष्य के जीवन, कृषि तथा जल विद्युत परियोजनाओं के लिए आवश्यक संसाधन है। वर्षा जल का सामयिक तथा स्थानिक रूप से असमान होना, बाढ़ एवं सूखा आदि समस्याओं का प्रमुख कारण है। बाढ़ एवं सूखा जैसी समस्याओं सहित अन्य विविध समस्याओं के समाधान तथा जल की निरन्तर मांग में वृद्धि होने के कारण, जल संसाधनों का उचित उपयोग तथा प्रबन्धन अति आवश्यक है। जल संसाधनों का सर्वेक्षण तथा मानचित्रण प्रभावी जल प्रबंधन के लिए आवश्यक कार्य है। स्थलाकृति मानचित्रण, हवाई छायांकन जैसी परम्परागत विधियों का प्रयोग काफी समय लेता है और इसकी कुछ सीमायें भी हैं। सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तंत्र प्रणाली का उपयोग पिछले कुछ वर्षो में एक आधुनिक पद्धति के रूप में किया जा रहा है।

सुदूर संवेदन विधि द्वारा एक बड़े क्षेत्र का मापन अत्यधिक कम समय में किया जा सकता है। पिछले लगभग 20 वर्षो में विभिन्न क्षमताओं के सुदूर संवेदन उपग्रह अन्तरिक्ष में स्थापित किये गये हैं, जिससे निरन्तर सुदूर संवेदन आँकड़े प्राप्त किये जा रहे हैं। इन आँकड़ों का साफ्टवेयर द्वारा विश्लेषण करके भूमि से संबंधित अनेकों मानचित्र बनाये जा सकते हैं। परन्तु जल संसाधन के उपयुक्त प्रबंधन के लिए उपयोग में लाये जा रहे निदर्शो तथा अन्य विधियों के लिए सुदूर संवेदन आँकड़े पर्याप्त नहीं हैं। इन आँकड़ों का उपयोग करने हेतु भौगोलीय सूचना तंत्र प्रणाली एक आधुनिक तकनीक है। सुदूर संवेदी और भौगोलीय सूचना तंत्र प्रणालियों का जल संसाधन एवं प्रबंधन के अनेक क्षेत्रों, जैसेः भू–उपयोग/भू–आच्छादन वर्गीकरण, बाढ़ मैदान प्रबंधन, जल विभाजकों का मानचित्रण एवं प्रबंधन, आवाह क्षेत्र अध्ययन, हिमाच्छादन मानचित्रण, जलाशय अवसादन, जलगुणवत्ता अध्ययन और भूजल अध्ययन इत्यादि में अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है। इस प्रपत्र में सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तंत्र तकनीकी के उपयोग पर प्रकाश डाला गया है।

जल संसाधन के प्रबन्धन में जनभागीदारी का महत्व

सुरेश चन्द्र शर्मा[1] डा0 सुभाष मित्रा[1] सुधीर कुमार अग्रवाल[1]
मुख्य अभियन्ता (परिकल्प) प्रभारी अधी0 अभि0 प्रभारी अधी0 अभि0 एवं निदेशक

1 सिंचाई अनुसंधान संस्थान, रूडकी

सारांश

प्रकति में प्राणी मात्र का अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये जल की आश्यकता होती है। जीव जन्तु तथा पेड़–पौधे सभी का जीवन जल पर निर्भर है। जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मानव के अविरल विकास में इसकी आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है। अतः यह कहना उचित होगा कि जल ही हमारा जीवन है। जल का मुख्य स्त्रोत वर्षा है। भारतवर्ष में वर्षा वर्ष के कुछ महीनों में ही होती है, इस कारण वर्षा के रूप में प्राप्त होने वाले जल के सदुपयोग की दृष्टि से इसका संरक्षण अति आवश्यक है। जल संरक्षण से तात्पर्य है कि जल के व्यर्थ बहाव को रोकना एवं इसका सर्वोत्तम लाभदायक उपयोग करना, क्योंकि जल बहुत बहुमूल्य है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी जनसंख्या का लगभग 70% कृषि या कृषि आधारित उद्योगों पर निर्भर करता है। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा अन्य विकास के कारण मानव की मूलभूत आवश्यकता जल की मांग भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। हर क्षेत्र में जल की उपलब्धता सीमित होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि उसका संरक्षण प्रभावी रूप से किया जाये तथा जल संसाधन के प्रबन्धन में अपनी सक्रिय भागीदारी से जल के सदुपयोग एवं आधुनिक तथा वैज्ञानिक पद्धति अपनाते हुये इसकी सुरक्षा के लिये एक सच्चे नागरिक का कर्तव्य निभाते हुये देश के विकास में सहयोग करें। कृषि प्रधान देश होने के कारण इस देश की स्थिति बहुत कुछ कृषि पर निर्भर करती है। देश का अधिकांश कृषक समुदाय ग्रामों में निवास करता है जो अपनी पैदावार के लिए वर्षा के जल, भूजल तथा नदियों, नहरों के जल पर निर्भर रहता है। ग्रामों की पूरी अर्थव्यवस्था ही जल संसाधनों पर आधारित है। आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये देश में खेती की पैदावार बहुत अच्छी होनी चाहिये जिसके लिये देश में जल संसाधन तथा सिंचाई साधनों का व्यापक तथा सुव्यवस्थित होना बहुत आवश्यक है।

भारतवर्ष में जल क्षेत्र में संवैधानिक प्राविधान तथा अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्राज्यीय जल मतभेद

पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल[1]
प्रधान अनुसंधान सहायक

डा0 शरद कुमार जैन[2]
प्रोफेसर (नीपको पीठ)

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की
2 जल संसाधन विकास एवं प्रबन्धन विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रूड़की

सारांश

भारतवर्ष में जल का उपयोग राज्यों के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आता है। यह सम्भव है, कि किसी राज्य में पूर्णतः प्रवाहित होने वाली नदी के पर्यावरणीय, एवं सामजिक प्रभाव उदाहरणतः जल संभरण, जल ग्रसनता इत्यादि दूसरे राज्य पर पड़ें। इसके अतिरिक्त किसी राज्य में होने वाली भू–जल निकासी का प्रभाव निकटवर्ती राज्य पर पड़ सकता है। किसी राज्य में प्रवाहित होने वाली नदी पर बनने वाले बाँध के जल प्लावन क्षेत्र की सीमा किसी अन्य राज्य या देश में हो सकती है। जल के क्षेत्र में उपरोक्त समस्त पहलू देश में जल संसाधनों के प्रयोग के लिए परस्पर सहयोग को महत्व प्रदान करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुसार राज्य के जल संसाधनों से सम्बन्धित नियम/कानून निर्मित करने का कार्य राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में निहित है। संसद अर्न्राज्यीय नदियों के नियमन एवं विकास से सम्बन्धित नियमों/कानून निर्मित करने का कार्य करती है। अतः जल के क्षेत्र में संविधानिक प्राविधान राज्य सूची की प्रविष्टि 17, केन्द्र सूची की प्रविष्टि 56 एवं संविधान के अनुच्छेद 262 में निहित हैं। इन प्रावधानों के अनुसार वृहत्त एवं मध्यम सिंचाई, जलशक्ति, बाढ़ नियत्रंण एवं बहुउद्देशीय परियोजनाओं के लिए केन्द्र सरकार की अनुमति लेना अत्यन्तावश्यक है।

जल सम्बन्धी अधिकारों में जल के उपयोग का अधिकार निहित है। भारतीय उपयोगाधिकार अधिनियम (1882) के अनुसार प्राकृतिक वाहिकाओं में प्रवाहित होने वाली नदियों/सरिताओं के जल के एकत्रीकरण, नियमन एवं वितरण का पूर्णाधिकार सरकार के पास है।

अन्तर्राज्यीय नदियों के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार की भूमिका एवं शक्तियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अन्तर्राज्यीय नदियों के जल के समाकलित विकास के उद्देश्य

से भारतवर्ष में संसद द्वारा केन्द्रीय सारणी–1 की प्रविष्टि 56 के अन्तर्गत नदी परिषद अधिनियम (1956) को गठित किया गया है। इस अधिनियम के अनुसार भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से नदी परिषदों का गठन किया गया है। नदी परिषद अधिनियम के अन्तर्गत गठित नदी परिषदों में बेतवा नदी बोर्ड, ब्रहमपुत्र बोर्ड, बानसागर नियंत्रण बोर्ड, नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण, गंगा बाढ़ नियंत्रण कमीशन सम्मिलित हैं।

भारतवर्ष की अधिकांश वृहत्त नदियाँ अन्तर्राज्यीय हैं। इन अर्न्तराज्यीय नदियों के जल के उपयोग, वितरण एवं नियंत्रण हेतु नदी आवाह क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले राज्यों के मध्य परस्पर मतभेद पाये जाते हैं। अन्तर्राज्यीय जल मतभेदों के समाधान हेतु केन्द्र सरकार द्वारा अन्तर्राज्यीय जल मतभेद अधिनियम 1956 की धारा 3 के तहत राज्य सरकार के अनुरोध पर जल मतभेद के समाधान हेतु जल विवाद प्राधिकरण का गठन किया जाता है। भारत वर्ष में अभी तक गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा, कावेरी, रावी एवं व्यास नदियों पर जल विवाद प्राधिकरणों का गठन किया गया है।

भारतवर्ष में प्रवाहित होने वाली कुछ प्रमुख नदियाँ जैसे सिन्धु, गंगा, महाकाली, ब्रहमपुत्र इत्यादि अन्तर्राष्ट्रीय है। ये नदियाँ भारतवर्ष के अतिरिक्त इसके अन्य पड़ोसी देशों जैसे पाकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल, चीन में भी प्रवाहित होती हैं। जिसके परिणाम स्वरूप भारतवर्ष तथा पड़ोसी देशों में परस्पर विवाद पाये जाते है। जिनके समाधान हेतु भारतवर्ष तथा पड़ोसी देशों के मध्य विभिन्न जल संधियाँ जैसे सिन्धु जल संधि, महाकाली जल संधि एवं गंगा जल विभाजन किया गया है।

प्रस्तुत प्रपत्र में जल क्षेत्र में संवैधानिक प्रतिबन्धों एवं जनमानस के जल सम्बन्धी अधिकारों को वर्णित किया गया है। इसके अतिरिक्त जल के क्षेत्र में विभिन्न अन्तर्राज्यीय मतभेदों एवं उनके समाधानों हेतु गठित प्राधिकरणों उदाहरणतः नर्मदा जल मतभेद प्राधिकरण, यमुना जल प्राधिकरण, कावेरी जल प्राधिकरण इत्यादि के साथ–साथ विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय जल संधियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

देवनदी पुनर्जीवन कार्यक्रम के अंतर्गत जल संसाधन के प्रबन्धन में जन भागीदारी

सुनिल पोटे[1] विलास पाटिल[1]

1 युवा मित्र संगठन, नासिक, महाराष्ट्र

सारांश

युवा मित्र पिछले 11 सालों से सिन्नर तहसील में काम कर रही है। वर्तमान में युवा मित्र सिन्नर और इगतपुरी तहसील के 81 गाँवों में ग्राम विकास, बच्चों का व्यक्तित्व विकास, महिला सक्षमीकरण, बायोडायवर्सिटी कंजर्वेशन, और नैसर्गिक स्त्रोतों के संरक्षण और शाश्वत विकास हेतु काम कर रही है, साथ ही युवा मित्र ग्रामीण लोगों की उपजीविका हेतु डेयरी जैसे नियमित और तात्कालिक आय अर्जित करने वाले खेती के लिए पूरक उत्पादन स्त्रोतों को विकसित कर किसानों के जीवनमान को अधिक विकसित करने की कोशिश में लगी है। सन् 2007 में आयोजित शोधयात्रा के परिणाम स्वरूप देवनदी पर ब्रिटिशों द्वारा बनाये गये चैक डैम्स और उस पर आधारित सिंचन व्यवस्था के पुनर्जीवन हेतु युवा मित्र ने काम करना शुरू किया और पिछले तीन सालों में पूरे किए हुए इस काम से दो गाँवों के कुल 596 किसानों को लाभ मिल रहा है। इन दो गाँवों में किए गये काम और उसके परिणामों को देख अन्य गाँवों के लोग भी अपने गाँवों के चैक डैम और नहरों को पुनर्जीवित करना चाहते हैं।

इन दो गाँवों में आयी सम्पन्नता को देख नदी किनारे बसे बाकी 18 गाँवों में भी नहरों को दुरूस्त करने के लिए कदम आगे बढ़ रहे हैं। दो अन्य गाँवों ने अपने गाँवों में वाटर यूजर्स एसोसिएशन का गठन कर गाँव की नहरों की दुरूस्ती का काम गाँव वालों के श्रमदान से शुरू किया है । इस प्रकार लोगों की सहायता से गॉव की सिंचन व्यवस्था का सुचारू रूप से चल रहा प्रबन्धन और उससे खेती के सिंचन का बढ़ा हुआ क्षेत्र देख जिला अधीक्षक, जिला कृषि विभाग के अधिकारी और जिला सिंचन विभाग के अधिकारियों ने भी सहायता के लिए हाथ आगे बढ़ाया है।

इन 20 को मिलाकर कुल 34 सेकण्ड क्लास चैक डैम्स सिन्नर तहसील में और 297 पूरे नासिक जिले में है, जिनका ऑफिशियल रिकार्ड युवा मित्र के पास उपलब्ध है। यह सभी चैक डैम्स व्यवस्थित रूप से काम करने लगे तो न्यूनतम 40,000 हैक्टर जमीन सिंचित होगी और पूरे महाराष्ट्र के सेकण्ड क्लास चैक डैम्स को दुरूस्त करने से लाखों हैक्टर क्षेत्र सिंचित होगा।

लघु हिमालय के सैंज जलागम में सतही जल संसाधनों की उपलब्धता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

डॉ. ओमवीर सिंह[1]

1 रीडर, भूगोल विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र – 136119

सारांश

जल एक अति महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जिसके बिना हमारा अस्तित्व असम्भव है। आई.पी.सी.सी. की नवीनतम रिपोर्ट के आधार पर 20वीं शताब्दी में पृथ्वी का औसत वार्षिक तापमान लगभग 0.74 ± 0.18°C बढ़ा व 21वीं शताब्दी के अंत तक यह तापमान विश्व के विभिन्न भागों में 1.4°C से लेकर 5-8°C तक बढ़ सकता है। पृथ्वी के इस बढ़ते हुए तापमान का हिमालय क्षेत्र के ग्लेशियरों व उनसे सम्बन्धित जल संसाधनों पर भारी प्रभाव पड़ने की संभावना है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सैंज जलागम, जोकि हिमाचल प्रदेश राज्य के लघु हिमालय परिक्षेत्र के कुल्लू जिले में स्थित है, को एक ईकाई प्रतिनिधि के रूप में चयनित किया गया है। प्रस्तुत शोध में सैंज जलागम के सतही जल संसाधनों का जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में अवलोकन किया गया है। सैंज जलागम लगभग 741 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है व इसकी समुद्र तल से न्यूनतम ऊंचाई लगभग 900 मीटर व अधिकतम ऊंचाई 6100 मीटर है। स्त्रोत से लेकर निकास तक इस जल संभरण की लंबाई लगभग 55 कि.मी. है।

जलागम के जलग्रहण क्षेत्र में ऊँचाई के साथ–साथ वर्षा की मात्रा, हिम आवरण व ग्लेशियरों से छादित क्षेत्र में परिवर्तन देखने को मिलता है। इस शोध में प्रयोग किए गए जलवायु व नदी के निस्सारण से सम्बन्धित 24 वर्ष (1981–2004) के आंकड़े भाखड़ा ब्यास प्रबंध बोर्ड, पंडोह से एकत्रित किए गए हैं। सैंज जलागम के आंकड़ों का विश्लेषण दर्शाता है कि 1981–2004 के मध्य इस जलागम में वर्षा के प्रारूप में कोई विशेष उतार–चढ़ाव का क्रम नहीं पाया गया परन्तु नदी के जल के निस्सारण में काफी कमी पाई गई। विश्लेषण से यह भी पता चला कि नदी के जल का निस्सारण न केवल घटा बल्कि दिसम्बर, जनवरी व अप्रैल के महीनों में इसमें महत्वपूर्ण कमी भी दर्ज की गई। इन महीनों में नदी के जल निस्सारण की यह कमी मुख्यतः जलागम के उच्च क्षेत्रों में अधिक मात्रा में हुए हिमपात को दी जा सकती है। सैंज जलागम के निस्सारण में यह कमी इस क्षेत्र में स्थापित विद्युत परियोजनाओं के लिए एक चुनौती साबित हो सकती है। अतः आने वाले समय में नीति निर्धारकों को विद्युत व सिंचाई परियोजनाओं को स्थापित करने से पहले काफी सोच विचार करना होगा। यह शोध पत्र विशेषतः कृषि विशेषज्ञों, जल संसाधन नीति निर्माताओं व खासतौर पर बांध अभियन्ताओं को भविष्य में जल संसाधानों से संबंधित निर्णयों में सहायता प्रदान करने में मददगार साबित होगा तथा आने वाले समय में इस क्षेत्र में जल संसाधनों के विकास की प्रभावी नीति बनाने में भी मदद करेगा। इस अध्ययन से सिंचाई व जलविद्युत परियोजनाओं के सतत् विकास की प्रक्रिया को भी बल मिल सकेगा।

जल–संसाधनों पर पर्यावरणीय प्रतिघात का मूल्यांकन

सुरेश चन्द्र शर्मा[1] एस.के.अग्रवाल[1] सुधीर कुमार[1]
मुख्य अभियन्ता (परिकल्प) प्रभारी अधी0 अभि0 अधि0 अभियंता एवं निदेशक

1 सिंचाई अनुसंधान संस्थान, रूडकी

सारांश

आज विश्व के सामने प्रदूषण का खतरा अत्यन्त गंभीर समस्या के रूप में सामने आ रहा है। यद्यपि बहुत पुराने समय से (जब से मनुष्य ने आग का उपयोग शुरू किया) प्रदूषण अस्तित्व में था, किन्तु 19वीं सदी की औद्योगिक क्रांति के कारण पूरे विश्व में यह बहुत तेजी से बढ़ा है, हालाँकि औद्योगिक क्रांति द्वारा विश्व में तकनीकी प्रगति बहुत तेजी से हुई है, किन्तु साथ ही साथ मनुष्य द्वारा प्रकृति का दोहन भी बहुत तेजी से किया जा रहा है, जो कि पर्यावरण के लिए बहुत हानिकारक है। यह सत्य है कि प्रगति के लिए उद्योगों का होना आवश्यक है, लेकिन उद्योगों की बेतहाशा वृद्वि जन–कल्याण के हित में नहीं हो सकती। दिन–प्रतिदिन बढते कारखानों से निकलने वाले जहरीले अपशिष्टों एवं गैसों से हमारा पर्यावरण एवं हमारे जल संसाधन प्रदूषित होते जा रहे हैं।

पर्यावरण मुख्यतया वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा जल प्रदूषण से दूषित हो रहा है। वायु के बिना जीवन सम्भव नहीं है। परन्तु जैसे–जैसे आबादी बढ़ रही है, कल–कारखानें भी बढ़ रहे हैं। कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ से व्यक्ति नई–नई बिमारियों का शिकार हो रहा है। वृक्षों के काटे जाने के कारण ऑक्सीजन की कमी हो रही है और हानिकारक गैसों की मात्रा वातावरण में बढ़ती जा रही है। दमा, खाँसी आदि बीमारियों का बढना इसी का परिणाम है। जीवन की खाने–पीने की सभी वस्तुएँ मिट्टी में ही पैदा होती हैं। जब मृदा ही प्रदूषित होगी, तो हमारे खाद्य पदार्थ भी प्रदूषित होंगे। इसका कारण भी वृक्षों का कटाव, रासायनिक खादों का प्रयोग, पॉलिथीन का प्रयोग आदि हैं। गाड़ियों के हॉर्न, मिलों के सायरन, टेलीविजन, टेप रिकार्डर, लाउड स्पीकर की आवाजों के शोर से ध्वनि प्रदूषण फैलता है, जो मनुष्य के कानों को खराब कर उन्हें बहरा बना रहा है।

जल संसाधन के प्रबन्धनः वाघाड़ परियोजना (वाघाड़ महासंघ जिला–नासिक, महाराष्ट्र) का अध्ययन

गोवर्धन.र.कुलकर्णी[1] ईश्वर.स.चौधरी[1] डॉ.संजय.म.वेलकरे[1] भरत.त्रं.कावले[1]

1 महात्मा जोतीबा फुलेपाणी वापर संस्था, गाँव–ओझर, तहसील–निफाड, जिला–नासिक, महाराष्ट्र

सारांश

हिन्दुस्तान में सहभागी सिंचाई की परंपरा है। किसान भाई जल स्त्रोतों का रखरखाव और परिचालन अपनी भागीदारी से करते हैं। महाराष्ट्र के माल गुजारी तलाव फड़ पध्दत राजस्थान की वाराबंदी लोक सहभाग से सिचांई के उत्तम उदाहरण हैं। मुगलों के जमाने में भी जल सिचांई परियोजना बनाई जाती थी जिसे प्रबंन्धन हेतु किसानों के हाथों सौंप दिया जाता था। उस वक्त किसानों में उन योजनाओं के प्रति अपने–पन की भावना थी। इसी भावना से किसान अपना समर्पित सहयोग परियोजना के रखरखाव में देता था। स्वतंत्रता पूर्व किसान के पानी पर हक जमाने के लिये कुछ अधिकारवादी नीतियों की वजह से किसानों का सहयोग जल वितरण क्षेत्र से हटता गया। किसान का अपना पानी पराया हो गया। जैसे–जैसे किसानों का सहयोग घटता गया सहभागी सिंचाई का सूरज ढलने लगा।

आजादी के बाद भी वही नीतियाँ बनी रहीं। इसका नतीजा देश में ढेर सारे डैम बनने के बावजूद भी सिंचाई के क्षेत्र में बढ़ोत्तरी के बजाय कटौती ही होने लगी। डैम में पानी बारिश का है तो वह मुफ्त में ही मिलना चाहिये आम किसानों की ये सोच बन गई। राजनीति ने इस मानसिकता को बढ़ावा दिया। दूसरी ओर चाहे 50 हे. की सिंचाई हो या 500 हे. मेरी तनख्वाह पर उसका कोई असर होने वाला नहीं। ये भी मानसिकता बनी इन्हीं के कारण डैम का पानी पूरे लाभ क्षेत्र को मिलने के बजाय मुठ्ठी भर लोगों का वतन बन बैठा। टेल के किसान को सिंचाई के लिये पानी नहीं और सरकार को सिंचाई करने का महसुल नहीं। महसुल ना मिलने से जल वितरण व्यवस्था का रखरखाव नहीं और वितरण व्यवस्था सही न होने से जल वितरण नहीं। इसी चक्र में नहर का पानी उलझ गया।

इससे राष्ट्रीय कृषि उत्पाद के साथ किसान का आर्थिक एवम् सामाजिक स्तर घटता गया। दूसरी ओर हिस्सों में बटती जमीनें बदला हुआ मौसम बारिश के घटते दिन बढ़ती आबादी के साथ बढ़ती अनाज की मांग ज्यादा उपज के लिये नगद फसल की ओर किसान का बढ़ता ध्यान, इन सब बातों को ध्यान मे रखते हुए नहर की सिंचाई वितरण प्रबन्धन में कुछ सकारात्मक बदलाव होने अनिवार्य हैं। ये सब बदलाव किसान के सहभाग बिना अधूरे हैं। सहभागी सिंचाई से किसानों को पानी के बँटवारे के साथ खाद्यान्न सुरक्षा भी दी जा सकती है। इसी बात पर गौर करते हुए देश की तथा राज्य की जल नीति में जल संसाधन के प्रबन्धन में उपभोक्ता संस्थाओं को शामिल करना एवम् ऐसी सुविधाओं का प्रबन्धन हस्तांतरण करना शामिल किया गया।

बदलते वातावरण में जल की भूमिका और प्रबंधन

कमलनयन दवे[1]
सयुंक्त निदेशक

मनमोहन सिंह[1]
नायब कार्यपालक इंजीनियर

1 गुजरात इंजीनियरिंग रिर्सच इन्स्टीट्यूट रेसकोर्स, वडोदरा

सारांश

जल आदिकाल से मानव जीवन का अभिन्न अंग रहा हैं। अभिन्न अंग होने के बावजूद भी जल को वह महत्व नहीं मिला, जिसका वह हकदार रहा है। जीवन के वहन में जल को पिछली सदी के आखरी चातुरांश तक पीछे की सीटों में स्थान दिया जाता रहा है। लेकिन इसके बाद से जल को महत्व का स्थान दिया जाने लगा है और नये मिल्लेनियम की प्रथम सदी में तो जल को बहुत ही महत्व दिया जाने लगा है, अब तो जल आगे की सीटों में सम्मान के साथ बैठ रहा है। इस सम्मान के मिलते ही जल संसाधनों को आदर से देखा जाने लगा है। यहाँ तक कि जल संसाधनों का महत्व आँका जाना, योग्य देख–रेख, भंडार बनाना, मितव्ययी उपयोग और जल की समय और स्थान संबंधी असमानता को दूर करने की तरफ खूब ध्यान दिया जाने लगा है, जिसे देखा और महसूस भी किया जा रहा है। जल के प्रबंधन की तरफ बढ़ते हमारे कदम तब ही पूर्ण कहलायेंगे जब हम जल, वातावरण और प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं को समुचित तौर पर समझने का प्रयास करेंगे। जल का प्रबंधन एक हाथ की कला और हथियार नहीं है इस प्रबंधन में तो बहुत सी संस्थाओं, विविध ज्ञान का संगम और लोगों का सहयोग लेना जरूरी होता है।

हमारे जल संसाधन प्रकृति की गोद में स्थित हैं और इसके आस–पास के वातावरण को सीधे प्रभावित करते हैं, जल संसाधनों के आस–पास का मौसम एक लंबे समय के बाद, वहां के वातावरण को बनाता है और एक आखरी स्वरुप देता है। मौसम स्थानिक है और जो अंतिम चरण में वातावरण को प्रभावित करता है। मानव की दिनचर्या, जीवन निर्वाह, जिससे वो स्थानिक जगह को प्रदूषित करता है, यह स्थानिक प्रदूषण एक बड़ा आकार लेकर वातावरण को प्रभावित करता है। वातावरण फिर जल संसाधनों को अपने प्रभाव में ले लेता है। इस तरह मानव जल संसाधनो को प्रभावित करता है। ग्लोबल वार्मिंग जिसका एक ज्वलंत उदाहरण है। एक उत्तम प्रकार के जल प्रबंधन के लिए एक ठोस योजना की जरूरत है। जिसके प्रथम चरण में डेटा–बेस बनाना, जल संबंधी जानकारियों को एकत्रित करना होगा। दूसरे चरण

में एकत्रित जानकारियों का विश्लेषण करना होगा और अंतिम चरण में एक ऐसी प्रबंध व्यवस्था का विकास करना पड़ेगा जो बदलते वातावरण के सामने, जल संसाधनों को बचाकर उन्हें और ज्यादा जन उपयोगी बना सकें। जल स्रोत यात्रा की शुरूआत से अंतिम पड़ाव तक, विभिन्न रास्तों से और सभ्यताओं से गुजरते हुऐ अपने साथ विविधता निहित करते हैं, जिस कारण उपभोक्ताओं को जल संबंधी जानकारी से परिचित करवाने का अभियान भी चलाना जरूरी है। अतः हमारी जल संस्थाओं को और भी मजबूत और स्वतंत्र करना पड़ेगा।

भारत में जल की कमी नहीं है। आज की तारीख में वातावरण जल पर बहुत हावी भी नहीं है। परंतु हमें एक सम्पूर्ण जल प्रबंध व्यवस्था को स्थानिक परिवेश में विकसित करना पड़ेगा, जिससे कि हम भविष्य में आने वाली वातावरण संबंधी समस्याओं से जूझने के लिए अपने जल संस्थानों को तैयार कर सकें। सामान्यतः अनुभव से देखा गया है कि जल संस्थानों के प्रबंधन, रख–रखाव व देख–रेख के सम्बन्ध में आने वाले समय के लिए तब्बकावार आयोजन की जरूरत रहेगी, आधुनिक तकनीकों जैसे की सुदूर संवेदन, भौगोलिक सूचना पद्धति का उपयोग, नवीनतम उपकरणों का उपयोग, कार्बन पदचिन्ह और जल संसाधनों की गुणवत्ता वगैरह को बढ़ावा देना पड़ेगा। प्रबंधन से जुड़े मुद्दे जैसे कि जल को प्राथमिकता देना, पर्यावरण को राष्ट्रीय मुद्दा बनाना, कानून में सुधार करना, विभिन्न स्तरों पर उचित जानकारी देना। जल के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाकर सामूहिक सोच में बदलाव लाना होगा।

जल संसाधन के प्रबन्धन में महिलाओं की भागीदारी

शकुंतला तरार[1]

1 एकता नगर, सेक्टर–2 गुढ़ियारी, रायपुर

सारांश

जिस प्रकार पृथ्वी पांच भौतिक तत्वों से मिलकर बनी है – जल, जमीन, वायु, अग्नि और आकाश उसी तरह पृथ्वी में रहने वाले मानव के लिए तीन चीजें आवश्यक हैं जल, जंगल एवं जमीन। जल के बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसके लिए हमें कुएँ, बावड़ी, तालाब एवं नदियों से निरंतर बहने वाली जल राशि तथा पर्यावरण के संतुलन के लिए वनों के सरक्षंण की अत्यन्त आश्यकता है। धरती की सुरक्षा मृदा की कटाई रोककर, सूखा, बाढ़, तापमान, उर्वरता एवं अधिक से अधिक वृक्ष लगाकर ही संभव है। भूमिगत जल का पुनर्भरण करके जल संरक्षण एवं सूखे से मुक्ति पाई जा सकती है।

हमारी पृथ्वी में पानी की कमी नहीं है। दुनिया भर में एक वर्ष में कुल 10 से 12 हजार एम.एच.एम. पानी बरसता है। एक एम.एच.एम. का अर्थ है एक मिलियन (दस लाख) जबकि 400 एम.एच.एम. पानी भारत में बरसता है जिसमें 230 एम.एच. एम. वाष्प बन कर उड़ जाता है, एवं 110 एम.एच.एम. नदियों में बह जाता है और 60 एम.एच.एम. सतह पर रहता है, यही पानी भूजल के स्तर को बढ़ाता है। भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 50 लीटर पानी का उपयोग करता है जबकि प्रकृति हमें 60 एम.एच.एम. पानी देती है। हमारे सामने समस्या पानी से ज्यादा उसके संचयन की है। हमें पारम्परिक शैली को अपनाने से पानी संचयन में सफलता मिलेगी।

जल संसाधन के प्रबंधन के लिए नदियों में बड़े–बड़े बाँध बनाया जाना नदियों के प्राकृतिक स्वरूप को प्रभावित करता है इससे आगे के क्षेत्रों में सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है और वर्षाकाल में बाढ़ का खतरा। क्योंकि नदियां भौगोलिक आधार पर बनी होती हैं उनका प्रवाह प्राकृतिक आधार पर न होकर कभी–कभी दिशा परिवर्तन भी कर लेता है। पिछली बार कोसी नदी ने बाढ़ का जो कहर बरपाया था वह बाँध के कारण ही था और इतिहास के काले सच के रूप में इस प्राकृतिक संपदा के साथ छेड़छाड़ की कहानी कह रहा था। अभी हाल ही में चीन ने ब्रह्मपुत्र पर बाँध बनाया है पूर्वोत्तर भारत इससे प्रभावित हुआ है और भविष्य में इसको सूखा और बाढ़ दोनों ही विभीषिकाओं का सामना करना पड़ सकता है।

भू–जल में बढ़ते नाइट्रेट एवं फ्लोराइड का कहर एवं उसका प्रबंधन

डॉ.डी.डी ओझा[1] एच.आर.भट्ट[1]

1भू–जल विभाग, जोधपुर–342003

सारांश

सृष्टि की संरचना में जल का अपना अलग ही वैशिष्ट्य है। यह पंचमहाभूतों में एक महत्वपूर्ण घटक है। प्रत्येक जीव की सभी शारीरिक क्रियाएँ जलाधारित होने के कारण जल को जीवन की संज्ञा दी गई है। जल के उभयचारी रूप हैं– रोगकारक एवं रोगशामक। विश्व स्वास्थ्य संगठन के प्रतिवेदन के अनुसार लगभग 80 प्रतिशत रोगों का कारण भी जल है। इसी प्रकार आयुर्वेदानुसार जल कई रोगों का शामक है। बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण जैसे मानवीय कारणों ने हमारे पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया है। आज बढ़ रहे रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों के प्रयोग ने हमारे जल के सभी स्त्रोतों, यथा तालाबों, कुओं, नदियों एवं सागर को भी प्रदूषित कर दिया है। भू–जल, जो कि देश में जलापूर्ति का एक प्रमुख स्त्रोत है, में बढ़ते हुए नाइट्रेट, फ्लोराइड तथा आर्सेनिक की मात्रा अमृत रूपी जल को विष बना रही है। हमारे देश के लगभग 20 राज्यों के 2. 5 करोड़ लोग फ्लोरोसिस की बीमारी से ग्रसित हैं। पश्चिम बंगाल, छतीसगढ़ तथा मध्यप्रदेश के कुछ हिस्सों में आर्सेनिक की आविषालुता तथा देश के अनेक राज्यों के भू–जल में नाइट्रेट का कहर जल को आविषालु (Toxic) बना रहा है। अतः इस दिशा में समुचित प्रयास एवं जन चेतना की महती आवश्यकता है।

जल की गुणवत्ता निर्धारण में इसके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुतः जल में कोई स्वाद एवं गंध नहीं होती है, परंतु स्थान तथा भूमि के अनुसार उसमें जो खनिज लवण एवं क्षार आदि मिल जाते हैं, वे ही जल का स्वाद प्रकट करते हैं। इसी प्रकार जल में गंध कुछ वनस्पतियों अथवा अन्य पदार्थों के जल स्त्रोतों में मिल जाने के कारण ही होती है।

रासायनिक दृष्टि से पेयजल की उपयुक्तता निर्धारण में नाइट्रेट तथा फ्लोराइड की महती भूमिका होती है। हमारे देश के कई राज्यों के भू–जल में नाइट्रेट, फ्लोराइड एवं आर्सेनिक की सांद्रता अनुमेय परास से अधिक हो जाने के कारण लाखों लोग इनके दुष्प्रभाव से प्रभावित हो चुके हैं क्योंकि देश के अधिकांश भागों में जलापूर्ति भू–जल पर ही आश्रित है।

वर्षाजल का घरेलू संरक्षणः गुवाहटी शहर के एक क्षेत्र विशेष का अध्ययन

बी. सी. पटवारी[1] एम. जोरामसांगी[1] पी. के. सरकार[1]
वैज्ञा. एफ एवं अध्यक्ष वैज्ञा. बी वरिष्ठ शोध सहायक

1 बाढ़ प्रबंधन अध्ययन केन्द्र, दिसपुर, गुवाहटी–781006

सारांश

विशाल ब्रह्मपुत्र और बराक के अंतरराज्यिक जलनिकास बेसिन प्रणाली प्रायः पूरे उत्तर–पूर्वी भारत के जलविज्ञान–परिदृश्य का प्रतिनिधित्व करता है। क्षेत्र का विरोधाभासी जलमौसमीय परिदृश्य का विश्व के मानचित्र पर एक विशिष्ट जलविज्ञानीय अस्तित्व है। विराट जल संसाधन उपजों से संपन्न यह कभी पावार हाउस और देश का जलाशय'' जैसा हो सकता है, वहीं आज के वर्तमान हालातों में यहाँ की जल संसाधन समस्याएं हैं, जहॉ प्रतिवर्ष करोड़ों की क्षति, अव्यक्त कष्टों का सामना करना पड़ता है। यह क्षेत्र मानसून महीनों के दौरान भारी वर्षा और बाढ़ का सामना करता है जो पानी–पानी सर्वत्र को चरितार्थ करता है और साथ ही गैर–मानसून महीनों में यहाँ पीने के लिए पानी की इतनी किल्लत हो जाती है कि विश्व के सबसे ज्यादा भीगे क्षेत्र चेरापुंजी सहित अन्य भागों में एक ही गूँज सुनाई पड़ती है। ''पीने को एक बूंद पानी नहीं''। गैर–मानसून महीनों में करीब 70 प्रतिशत पहाड़ी राज्यों में साथ ही समतल क्षेत्रों में भी जहाँ करीब 9 महीनों से भी ज्यादा सूखा रहता है और जल संरक्षण की बहुत अधिक आवश्यकता हो जाती है। असम राज्य की जल–नीति के मसौदे के अनुसार संरक्षण की जागरूकता का प्रसार – शिक्षा, नियमित प्रोत्साहनों और डिसइनसेंटिव्स, वर्षा–जल हारवेस्टिंग, आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली और पारंपरिक प्रणाली दोनों के द्वारा बढावा और संवर्धन किये जाने हैं ।

इसके अतिरिक्त, सूचनाओं के प्रसार द्वारा प्रोत्साहित और प्रचारित किया जाएगा, प्रदर्शन और प्रोत्साहन, पारंपरिक वर्षाजल संचयन के तरीकों को आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यमों द्वारा आधुनिकीकरण पर बल देते हुए वर्षाजल संचयन द्वारा भू–जल के पुनर्भरण पर बल दिए जाने की अपेक्षा है। इस परिप्रेक्ष्य में यह शोध आलेख के गुवाहटी में धारित वर्षाजल के संचयन में लेखकों का एक वैयक्तिक और स्वदेशी प्रयास है। तब से लेकर एक दशक से भी ज्यादा समय तक विभिन्न घरेलू और कृषि लाभों में प्रयुक्त और नाममात्र प्रौद्योगिकी ज्ञान के जरिए भू–जल पुनर्भरण में वर्षाजल संचयन का ऐसा विवरण प्रस्तुत किया है कि कैसे टैक्नोलॉजी इस पर काम करती है।

वड़ोदरा शहर के भूजल में पेस्टीसाइड प्रदूषण की समस्या

एम.के.शर्मा[1] बबीता शर्मा[1] राकेश गोयल[1] वी.के.चौबे[1] आर.डी.सिंह[1]
वैज्ञा. सी शो0 सहा0 तकनीशियन वैज्ञा. एफ निदेशक

1 राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

सारांश

जल में बढ़ते प्रदूषण का मुख्य कारण जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि से बढ़ता शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए ज्यादा से ज्यादा उर्वरकों एवं कीटनाशकों (पेस्टीसाइड्स) का प्रयोग है। गुजरात प्रदेश के वड़ोदरा शहर के भूजल के नमूने पूर्व मानसून तथा पश्च मानसून अवधि में 2008–09 तथा 2009–10 में एकत्रित किये गये तथा इन नमूनों का भौतिक रासायनिक प्राचालों एवं पेस्टीसाइड की मात्रा के लिए परीक्षण किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वड़ोदरा के भूजल में पाये गये विभिन्न भौतिक रासायनिक प्राचलों के मानों तथा पेस्टीसाइड्स की मात्रा का भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा पेयजल हेतु निर्धारित सीमा से तुलना की गई तथा यह पाया गया कि वड़ोदरा के भूजल में कुल घुलित ठोस की मात्रा 486 मि.ली. ग्राम प्रति लीटर से 3507 मि.ग्रा./ली. तक पायी गयी तथा लगभग सभी नमूनों में 500 मि.ग्रा./ली. से अधिक पायी गयी। कुल कठोरता की मात्रा 79 मि. ग्रा/ली. से 1144 मि.ग्रा./ली. तक पायी गयी। तथा 29 प्रतिशत नमूने अधिकतम सीमा 600 मि.ग्रा./ली. से अधिक पाये गये। भूजल के नमूनों में पेस्टीसाइड्स के परीक्षण से ज्ञात होता है कि एल्फा–बी.एच.सी. बीटा–बी.एच.सी., डेल्टा–बी.एच.सी. , ऐल्ड्रन एल्फा–एण्डोसल्फान तथा मेथोक्सि–क्लोर की मात्राएं निर्धारित सीमा (1.0 माइक्रोग्राम/ली.) को पार कर गयी। अतः प्रपत्र में पेयजल के शुद्धिकरण के लिए कुछ अनुशंसाएं भी दी गयी हैं।

जल संरक्षण में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी परियोजना की भूमिका

यशपाल सिंह नरवरिया

जलीय जीव प्रयोगशाला, प्राणिकी अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर म०प्र०

सांराश

प्राकृतिक जल संसाधन के स्रोत दिन–प्रतिदिन नष्ट होते चले जा रहे हैं। आज मनुष्य के सामने जल संकट एक विकराल समस्या के रुप में प्रकट हुआ है। हमारे देश में शुद्ध पेयजल की गंभीर समस्या उत्पन्न हुई है। हमारा देश नदियों का देश होने के बाद भी हमारे देश के कई भागों में आज शुद्ध पेयजल आपूर्ति नहीं हो पा रही है। यह समस्या सरकार के साथ–साथ सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक चुनौती साबित हो रही है। बढ़ती जनसंख्या, औद्यौगीकरण, मृदा अपरदन, तेजी से हो रहे वन विनाश ने जल संकट को बढ़ावा दिया है।

वर्तमान अध्ययन शिवपुरी जिले के खनियाधाना एवं कोलारस जनपद में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत जिले में योजना प्रारम्भ वर्ष 2006 से वर्ष 2010 जल संरक्षण एवं संवर्धन के कार्यो की संख्या 974 है। जिसमें तालाब, चेक डैम, नाला बंधान, स्ट्रैच, सिंचाई कूप एवं पेयजल कूप (कपिल धारा) आदि सम्मिलित हैं। इन कार्यों से जहाँ एक ओर जल संरक्षण की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है। वहीं इस जल संरक्षण से 5281 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई क्षमता में वृद्धि हुई है। वहीं दूसरी ओर खेत तालाबों की संख्या 2422 है। इसमें 1934 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई क्षमता में वृद्धि हुई है। वहीं महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के द्वारा पेयजल की विकराल समस्या से काफी हद तक निजात मिली है।

जल शुद्धिकरण में रिवर्स ऑसमॉसिस की भूमिका

संजय गोस्वामी

डब्ल्यू.आई.पी., बी.ए.आर.सी., मुम्बई–85

सारांश

वर्तमान समय में शुद्ध जल की उपलब्धता धीरे–2 कम होती जा रही है। जल में बढ़ते प्रदूषण से शुद्ध जल के लिये विभिन्न शोधक पद्धतियों का इस्तेमान किया जा रहा है। जल के शुद्धिकरण हेतु विकसित पद्धतियों में रिवर्स ऑसमॉसिस प्रमुख हैं जो जल के लाभकारी प्रयोग बढ़ाते हैं। जल संरक्षण का एक उपाय रिवर्स ऑसमॉसिस है, रिवर्स ऑसमॉसिस उपकरण, तकनीक या बेहतर डिजाइन अथवा प्रक्रिया है जो जल के नुकसान, अपव्यय या प्रयोग को कम करने के लिए लागू किया जाता है। रिवर्स ऑसमॉसिस (Reverse osmosis) वह क्रिया है जिसके द्वारा गंदे पानी को शुद्ध कर पीने योग्य बनाया जाता है। भारत में जहाँ प्रतिवर्ष औसतन 60 सेमी. वर्षा होती है, जहाँ प्रतिवर्ष 4100 खरब मीटर^3 जल प्राप्त होता है जिसका केवल 900 खरब मीटर^3 ही भूजल के रूप में उद्योग, कृषि, रसायन आदि में इस्तेमाल होता है। शेष मात्रा नदी या समुद्र में बेकार चली जाती है जिससे बाढ़ का खतरा बना रहता है। वर्षा के जल से गंदे पानी को रिसाइकल कर पुनः शुद्व कर पीने योग्य बनाने की क्रिया की अत्यंत आवश्यकता है जिससे शहर, गाँव, उद्योग, कृषि आदि में पानी की किल्लत को दूर किया जा सके। समुद्री जल को पीने योग्य रिवर्स ऑसमॉसिस तकनीक द्वारा बनाया जाता है। रिवर्स ऑसमॉसिस पानी के सूक्ष्म जैविक पदार्थ यथा बैक्टीरिया को भी, जो शरीर के लिए नुकसानदेह हैं, अलग करता है।

प्रस्तुत लेख में जल शुद्धिकरण में प्रयुक्त रिवर्स ऑसमॉसिस पद्धति पर चर्चा की गई है तथा इसकी जल शुद्धिकरण क्षमता पर प्रकाश डाला गया है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के जल में आर्सेनिक की स्थिति

सिराज केसर[1] मीनाक्षी अरोरा[1]

1 हिन्दी इंडिया वाटर पोर्टल

सारांश

भूजल में आर्सेनिक देश में जल प्रदूषण की एक खतरनाक तस्वीर पेश कर रहा है। देश की राजधानी, पश्चिम बंगाल, आसाम, बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, राजस्थान सहित देश के कुछ और प्रदेशों में भी आर्सेनिक पीने के पानी में आ चुका है।

उत्तर प्रदेश में यूनिसेफ की 2003–04 और 2009–10 की दो रिपोर्टों के आधार पर जानकारी आई है कि उत्तर प्रदेश के 20 जिले आर्सेनिक से प्रभावित हैं और 31 जिले ऐसे हैं जहां पर आर्सेनिक की संभावना व्यक्त की गई है।

यह जानकारी उत्तर प्रदेश के बारे में एक खतरनाक तस्वीर पेश कर रही है और उसमें भी पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में आर्सेनिक की मात्रा 10 पी.पी.बी. की अनुमन्य मात्रा से 20 से 60 गुना ज्यादा तक पाई गई है।

डब्ल्यू.एच.ओ. के अनुसार पेयजल में आर्सेनिक की मात्रा का मानक 0.01 मिग्रा./ली. (10 पी.पी.बी.) है। लेकिन ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैंडर्ड अभी भी 50 पी.पी.बी. को मानक मानते हैं। मानक की अलग–अलग मात्रा होने से भी स्टैंडर्ड उपकरण सुरक्षित पेयजल के फिल्टर, तकनीक आदि का एक निश्चित स्टैंडर्ड बन पाने में दिक्कत हो रही है।

प्रस्तुत रिपोर्ट में पूर्वी उत्तर प्रदेश में आर्सेनिक की उपस्थिति को फोकस किया गया है साथ ही आर्सेनिक के सस्टेनेबिल सोल्यूशन पर कुछ संभाव्यता व्यक्त की गई है।

सबसे पहले जरूरी है कि आर्सेनिक के बारे में एक माइक्रोलेवल आर्सेनिक मैप बनाया जाये और हर जिले में प्रयोगशालाओं की स्थापना की जाए जिससे आर्सेनिक का चिन्हीकरण हो सके ताकि आर्सेनिक युक्त पानी पी रही आबादी को जागरुक किया जा सके।